ऐतरेयोपनिषद्

भाषाटीका सहित

जिसमें

आत्मा व ब्रह्मका निरूपण और प्राण व प्रणवकी उपासना की व्याख्या व संन्यासादि आश्रमों के लक्षण व धर्म अच्छेप्रकार वर्णित हैं ॥

जिसको

श्रीमान् सर्वैश्वर्य्य सम्पन्न श्रीमुंशीनवलकिशोर (सी, आई, ई) जीने भारतवर्षीय जनोंके उपकारार्थ बहुतसा धन व्ययकरके कोलाख्य नगरनिवासी पंचोली यमुनाशंकर नागरब्राह्मण से सरल देशभाषा में उलथा कराय स्वयंत्रालय में मुद्रित कराय प्रकाशित किया ॥

दूसरी बार

लखनऊ

मुंशी नवलकिशोर (सी, आई, ई) के छापेखाने में छपी
सितम्बर सन् १९०६ ई० ॥

ॐ

अथ विज्ञापनम्

विदितहो कि यह ऋग्वेदके ब्राह्मणभाग सम्बन्धी ऐतरेयनामक उपनिषद् (ब्रह्मविद्या) है, तिसका जो श्रीपरमहंस परिव्राजकाचार्य श्रीशंकराचार्यजीकृत महाभाष्य, अरु तिसपर आनन्द गिरिकृत टीकाहै, तिसके अनुसार, मूलमन्त्रसहित, यह भाषाभाष्य मैं अतिअल्पज्ञ अविद्वान्‌ने, अपने गुरु श्री १०१ स्वामी ब्रह्मानन्दमहाराजकी कृपा बलसे, अरु सर्वजनहितकारी परमधार्मिक ब्रह्मनिष्ठ मुन्शी नवलकिशोर (सी, आई,ई) की आज्ञा से अनुवाद कियाहै, अरु मैं अतिअल्पज्ञ होनेसे सर्वसुज्ञविवेकी पाठकजनों से सविनय प्रार्थना करताहौं कि इस भाषाभाष्य में जोकुछ अनुचित लेखहुआहोय तिसको मुझपर क्षमाकरना, अरु इस भाषाभाष्य में बहुधा आनन्दगिरिके टीकाकी भाषा है सो श्रीद्विजवर पण्डित पीताम्बरजी महाराजकी टीकाके अनुसारहै॥

सूचीपत्रम् ॥

१ पृष्ठोपरि पुष्टाक्षरों में श्रुतिका मूलमन्त्र
२ ‘‘ ’’ इस चिह्नान्तर भाषानुवाद में मूलश्रुतिके वाक्य
३ ( ) इस चिह्नमें पूर्व अरु मूल श्रुतिवाक्य के अक्षरार्थ
४ [ ] इस चिह्नान्तर में आनन्दगिरिका अनुवाद
५ “ ” इस चिह्नान्तर में अन्यश्रुति स्मृतिआदिकों के प्रमाण वाक्य अरु तिसके पश्चात् निकट तिसका अक्षरार्थ ’।
६ “ ” इस चिह्नान्तर प्रमाणमें केवल श्रुतिवाक्यार्थ
७ ।‘ ’। इस चिह्नान्तरमें भाषाकार करके कल्पितविचार

“इति”

ॐ

तत्सद्ब्रह्मणेनमः ॥

"अथ"

ऋग्वेदीयैतरेयोपनिषद् ॥

अथ प्रथमाध्यायगत प्रथम खंडः प्रारभ्यते

हरिः ॐ ॥ आत्मा वा इदमेक एवाग्र आसीत् । ना-
न्यत्किञ्चन मिषत् । स ईक्षत् लोकान् नु सृजा इति १ ॥

श्री

ऋग्वेदीय

अथ ऐतरेयोपनिषद् भाषाभाष्य प्रारभ्यते

"अथ"

ऐतरेयोपनिषद्गत प्रथमाध्याय भाषाभाष्य प्रारंभ

"अथ प्रथम खंड भाषाभाष्य"

हे सौम्य! [" आत्मा वा इदमेक एवाग्र आसीत् " { यह आगे एक आत्मा ही था } इत्यादि वाक्योंसे केवल एक आत्म-विद्याके आरंभके अवसरके कहनेको उक्त अर्थका कथन करतेहैं] । ' ऋग्वेद के ब्राह्मण में ' । यहां पर्यन्त अपरब्रह्म । ' प्राण वा प्रणव' । की उपासना सहित कर्म समाप्त हुआ [तिस कर्म की समाप्ति कैसे विदित होती है, यह आशंका करके कहते हैं । यहां परा-

गति शब्दका उत्कृष्ट गमनकरने योग्य ।'अर्थात् प्राप्त होने योग्य'। फलार्थहै सो यह उपासना सहित कर्मकी परगति उक्थ(प्राण)की उपासनारूप द्वारसे समाप्त किया । [उपासना सहित कर्म की समाप्ति को ही वाक्यके उदाहरण करके देखावें हैं। यहां यह अर्थ है कि, तहां " सह सर्वेण भोज्येन संयुक्तोऽध्यात्माधिदैवलक्षणः प्राणः सत्यैकशब्दवाच्यो भवति " सर्व भोज्यकरके संयुक्त अध्यात्म, अधिदैवरूप सो प्राण, एक सत्य शब्दका वाच्य होता है, । इस वाक्यसे प्राणका स्वरूप ।' कथन '। समाप्त किया ।] " एतत् सत्यं ब्रह्म प्राणाख्यम् " " एष एको देवः " यह प्राण नामक सत्य ब्रह्म है, । यह एक देव है, । [तब वाक्य और अग्न्यादि देव कौन हैं, यह आशंका करके, " तस्य वाक् सन्ति " " अथातोऽस्य पुरुषस्य" तिसका वाक् रूप सन्तान है, अरु अब इस करके इस पुरुषका, । इत्यादिक वाक्यों से सो वाकादिक प्राणकी ही विभूतियां (विस्तार) हैं इस प्रकार कहा है । यह कहते हैं] " एतस्यैव प्राणस्य सर्वे देवा विभूतयः " " एतस्य प्राणस्यात्मभावं गच्छन्देवता अप्येति " इसही प्राणकी सर्व देवता विभूतियां हैं, अरु इस [ऐसे सर्वात्मा प्राण के कर्म सहित आत्मतत्त्व रूप करके विज्ञान से सर्व देवता के स्वरूप प्राणकी प्राप्ति रूप फल " प्रज्ञामयो देवतामयो ब्रह्ममयोऽमृतमयोऽसंभूय देवता अप्येति य एवं वेद " जो इसप्रकार जानता है, सो प्रज्ञामय, देवतामय, ब्रह्ममय, अमृतमय, होइके देवताओंको प्राप्त होताहै, । इस वाक्यसे समाप्त कियाहै, इसप्रकार कहतेहैं । यहां यह भाव है कि, तिस प्रकार हुये उपासना सहित कर्मसे केवल आत्मस्वरूपकी स्थितिरूप मोक्षकी असिद्धिसे, तिसमोक्षकी सिद्ध्यर्थअब केवल आत्मविद्याके आरंभका अवसर (समय) है]प्राण के आत्मभाव को पावताहुआ देवता को पावता है, । इस प्रकार श्रुति विषे कहाहै ॥ [यहां मध्य में सर्व रूप सूत्रात्माकी प्राप्ति से भिन्न, मोक्षके अभावसे तिस सूत्रात्माकी प्राप्तिरूप मोक्षार्थ

केवल आत्मक्रियाका आरंभकरना युक्त नहीं । इसप्रकार किसी एक वादी के मतको उठावते हैं] सो यह देवता की प्राप्तिरूप परम पुरुषार्थ है, यह मोक्षहै, अरु सो यह मोक्ष उक्त प्रकारके उपासना अरु कर्मके समुच्चयरूप साधनसे प्राप्तहोने योग्य है, इससे अन्य श्रेष्ठनहीं । इसप्रकार कोई एकवादी निश्चयको प्राप्त हुयेहैं । तिनके । 'निश्चयको '। निषेध करनेकी इच्छावालीहुई यह उपनिषद् केवल आत्मज्ञान के विधानार्थ " आत्मा वा इदमेक एवाग्र आसीत्" यह (कार्यरूपजगत्) आगे निश्चयकरके एकही आत्माथा, इत्यादि रूप अर्थको कहेहै ॥ [ननु " आत्मा वा इदमेक एवाग्र आसीत् " यह आगे एकही आत्माथा, इत्यादि वाक्य केवल आत्माकोही विषय करनेवाले कैसे बने, क्योंकि " सइमान् लोकानसृजत " सो इनलोकोंको सृजताहुआ, इसप्रकार लोकनकी सृष्टिकी प्रतीतिसे, अरु तिस सृष्टिकी सोपाधिक हिरण्यगर्भकरके रचित होने से पुराणों विषे प्रसिद्ध है ताते, अरु " ताभ्यो गामानयत्" तिनके अर्थ गौवोंको ल्यावताहुआ , । इत्यादि व्यवहारोंकी लोकविषे सोपाधिक विषयभावकी प्राप्ति प्रसिद्ध है ताते । अरु पूर्व " अथातोरेतसः सृष्टिः " " प्रजापते रेतोदेवाः" अब इसके पश्चात् वीर्यसे सृष्टि होवेगी । प्रजापतिके वीर्यरूप देवहैं, इसवाक्य विषे प्रजापतिशब्दके वाच्य हिरण्यगर्भको प्रसंगविषे प्राप्तकियाहै ताते " तस्य तद्विषयत्वसौचित्यादात्मगृहीतिः " तिसको तिस विषयभावके उचितहोने से आत्मा का ग्रहणहै, इस अधिकरणसूत्र विषे उक्त पूर्वपक्षीकी रीति से वादी शंकाकरेहै] पुनः कर्मके सम्बन्धी केवल आत्माकेविधानार्थ उत्तरग्रन्थहै, यह कैसे जानिये, तहां कहतेहैं, कि [" आत्मा वा इदमेक एवाग्र आसीत् " यह आगे एकही आत्माथा , इसप्रकार अद्वितीय आत्माके उपक्रमसे । अरु" एक ब्रह्मैष इन्द्रः" यह ब्रह्मा है, यह इन्द्र है , । इस अनुक्रमकरके " सर्वं तत्प्रज्ञानेत्रं प्रज्ञाने प्रतिष्ठितम्" सर्व सो प्रज्ञारूप नेत्रवालाहै, अरु प्रज्ञानविषे स्थित

हैं,। इसप्रकार प्रज्ञानशब्दके वाच्य प्रत्यगात्मारूप अधिष्ठानवाला होनेकरके तिससे भिन्न ब्रह्मशब्दके वाच्य हिरण्यगर्भादिक प्रपंच के अभावको कहके "प्रज्ञानं ब्रह्मेति" प्रज्ञान ब्रह्महै, इसप्रकार अद्वितीय आत्माके उपसंहारसे। अरु "स एतमेव पुरुषं ब्रह्म ततमपश्यदिति" सो इसही पुरुषको परिपूर्णब्रह्म देखताहुआ, इसप्रकार मध्यविषे स्मरणहोनेसे ब्रह्मआत्मा के अद्वितीयभावको अन्य प्रमाणका अविषय होनेकरके अपूर्वताहै ताते। अरु "अमुष्मिन् स्वर्गेलोके सर्व्वान् कामानाप्त्वाऽमृतः समभवदिति" इस स्वर्गलोकविषे सर्वकामोंको प्राप्तहोके अमृतहोताहुआ, इस प्रकार स्वर्गशब्दके वाच्य निरतिशयभावरूप सुखस्वरूप ब्रह्मविषे एकभावकरके स्थितहुये पुरुषको तिसके अन्तर्भूत विषयसम्बंधी सर्वानन्दकी प्राप्तिरूप फलके कथनसे। अरु सृष्टिआदिक अर्थवादसे "स एतमेव सीमानं विदार्य्यैतयाद्वाराप्रापद्यत" सो इसही सीमाको विदीर्णकरके तिसद्वारसे प्रवेशकरताहुआ, इस प्रकार प्रवेशका कथनहोनेसे। अरु "तस्यत्रय आवसथास्त्रयः स्वप्ना इति" तिसके तीन स्थान हैं, तीन स्वप्नहैं, इसप्रकार जाग्रदादि तीन अवस्थाके स्वप्नरूपसे मिथ्यापनेकी उक्तिरूप उपपत्तिसे, ग्रन्थके निष्प्रपंच अद्वितीय आत्माके तत्परपनेके जानने से अन्य अर्थकी शंकाहोनेका अनवकाशहोनेसे अरु लौकिकादिक सृष्टिके कथनसे, अध्यारोप अरु अपवादकरके उक्त आत्माके निश्चयार्थ आत्माविषे सृष्टि के आरोप से। यहां अन्य स्थलवत् आत्मशब्द से परमात्माकोही ग्रहण करते हैं। जैसे "तस्माद्वा एतस्मादात्मनः आकाशः संभूतः" तिस वा इस आत्मा से आकाश होताहुआ, इत्यादि अन्य सृष्टिवाक्योंके श्रवणोंविषे आत्मशब्दसे परमात्माका ग्रहणहै। वा जैसे अन्य लौकिक आत्मशब्द के उच्चारणविषे आत्मशब्दसे मुख्य प्रत्यगात्माही ग्रहण करते हैं, तैसे यहां भी होनेको योग्यहै, क्योंकि वाक्यार्थकरके तैसाही है ताते। अरु "आत्मगृहीतिरितरवदुत्तरादिति" उत्तरग्रन्थसे अन्य

स्थलवत् आत्माका ग्रहण है, इस अधिकरणसूत्रके सिद्धान्तकी रीतिसे केवल आत्माकी परायणताके निश्चय से उत्तरग्रन्थको सोपाधिक वस्तुकी परायणता नहींहै। इसप्रकार सिद्धान्ती कहे है] अन्य अर्थके न जानने से इसही प्रयोजनार्थ उत्तरग्रन्थ है, यह जानते हैं [जो कहा यहही मोक्ष है तहां कहते हैं। यहां तिस हिरण्यगर्भ के स्थूलरूप विराट्केपींड़को ईश्वर क्षुधा तृषाकरके युक्त करताहुआ, यह इस श्रुतिका अर्थहै] तैसेहुये पूर्वोक्त अग्नि आदिक देवताओं को क्षुधा तृषादिक दोषकरके युक्त होनेसे संसारीपनेको यहां श्रुतिआगे "तमशनायापियासाभ्यामन्ववार्जत्" तिसको क्षुधा तृषा करके प्रार्थना करते हुये, । इत्यादि वाक्यसे देखावेगी। अरु क्षुधा आदिक दोषवाला सर्व संसारहीहै [अरु जो वादीने कहाथा कि निरुपाधिक आत्मस्वरूप से स्थिति को विषयादिकों से रहित होने करके मोक्ष नहीं है। सो कथन असत् है, क्योंकि "तस्य योसनायापिपासे शोकं मोहं जरां मृत्युमत्येति" जो क्षुधा तृषा शोक मोह जरा अरु मृत्यु को लाँघता है, । इस क्षुधा आदिक के उल्लंघन की श्रुति से तिस ब्रह्मरूपसे स्थितहुये पुरुषको तिस नियमित दुःखों की अप्राप्ति होने से, अरु "आनन्दो ब्रह्मेति" आनन्दब्रह्म है, । ऐसे जानना, इस अन्य श्रुति वाक्य से "। अमुष्मिन् स्वर्गे लोके" इस स्वर्गलोक बिषे सर्व कामों को पाय के अमृत होता हुआ, । ऐसे आगे यहां भी स्वरूप से आनन्दरूप ताके जानने से अरु स्वर्ग शब्दसे सामान्य सुख का वाची होनेसे "अनन्ते स्वर्गे लोके" "ब्रह्मविदः स्वर्गलोकमित ऊर्ध्वं विमुक्ता" याके पीछे ब्रह्मवेत्ता स्वर्गलोक को पायके मोक्ष होतेहैं, । इत्यादिक श्रुतियों बिषे ब्रह्मानन्द बिषे स्वर्ग सुखकी योजना करने से तिसको विषय के अभाव हुयेभी पुरुषार्थ (पुरुषकी इच्छाका विषय, वा पुरुष करके साध्य अर्थ वा मोक्ष) होनेसे मोक्षरूपताहै] क्योंकि परब्रह्म के क्षुधा आदिकोंके अभावकी प्रतिपादक श्रुतिहै ताते ॥ [इसप्रकार निष्प्र-

पंचरूप आत्माके विद्याकी मोक्षसाधन ताको अंगीकार करके, तिसविद्याकी कर्मरहित पुरुष कहिये संन्यासी विषे स्थितहोनेके नियमरूप केवलता संभवे नहीं। इसप्रकार कहता हुआ वादी संन्यासीकेअर्थ आक्षेप करताहै] इसप्रकार केवल आत्माकाज्ञान मोक्षका साधकहोवो, परन्तु इसविषे अकर्मी (संन्यासी) पुरुषही अधिकारको प्राप्त होताहै ऐसा नहीं, क्योंकि विशेषके अश्रवणसे, अर्थात् कर्मरहित संन्यासीरूप अन्य आश्रमीपुरुषही यहां मोक्षका अधिकारीहै ऐसे श्रवण कियानहीं ताते,। अरु श्रुतिविषे बृहतीसहस्ररूप कर्मको प्रसंगविषे प्राप्तकरके अनन्तरही आत्मज्ञानका आरम्भ करते हैं। ताते यहां (आत्मज्ञानकेविषे) कर्मी पुरुषही अधिकारको पात्रताहै।'कर्मका त्यागी नहीं'। [इसप्रकार कर्मके सम्बन्ध से रहित केवल आत्मविद्याको अंगीकार करके, तिस विद्याका कर्मरहित पुरुष (संन्यासी) विषे स्थित होनेका नियम निषेधकिया। अब अंगीकारका परित्यागकरेहै। यहां यह अर्थहै कि, कर्मकाण्ड विषे कर्मसम्बन्धी ज्ञानके विषयकी सर्वात्मताका कथन है ताते, "एष ब्रह्मा" यह ब्रह्माहै, इत्यादिक वाक्यों से यहां 'इस उपनिषद् विषे' भी सर्वात्माका कथन है ताते, अरु तिस लिंगकरके इस आत्मज्ञानके भी कर्मसम्बन्धीपने के अनुमानसे आगे कहनेके आत्मज्ञानको कर्मसम्बन्धीपना।'अर्थात् कर्मरूप सहकारी करके युक्तपना।' है] अरु कर्मका असम्बन्धी आत्माका ज्ञान नहींहैं, क्योंकि यहां पूर्ववत् अन्तविषे कर्म की समाप्तिहै ताते। जैसे कर्मसम्बन्धी पुरुषको सूर्यरूपसे स्थावर जंगमादि सर्वप्राणियोंका आत्मापना "सूर्य्यात्माजगतस्तस्थुषश्च" सूर्यआत्मा, इत्यादिरूप वाक्यकरके ब्राह्मणभागविषे अरु मन्त्रभागविषे कहाहै। तैसेही "एष ब्रह्मा एष इन्द्रः" यह ब्रह्माहै यह इन्द्रहै,। इत्यादिरूप वाक्यका आरम्भकरके सर्वप्राणियोंका आत्मापना कहाहै। अरु "यच्च स्थावरजंगमं सर्वं तत् प्रज्ञानेत्रम्" औ जो स्थावर जंगम सर्व है प्रज्ञा।'अर्थात् स्वप्रकाश चैतन्य'।

रूप नेत्र ।' निर्वाहकरने '। वालाहै, । इसप्रकार अन्तविषे उपसंहार ।' समाप्त ।' करेंगे । अरु तैसेहुये संहितारूप उपनिषद् विषे "एतंह्येव बह्वृची महत्युक्थे मीमांसन्त" इसही बृहतीसहस्र नामक सत्र (यज्ञ) विषे ऋग्वेदकेवेत्ता विचारतेहैं, इत्यादिरूप वाक्यसे कर्मके सम्बन्धीपनेको कहके "सर्वेषु भूतेषु एतमेव ब्रह्मेत्याचक्षत" सर्वभूतोंविषे इसहीको ब्रह्म ऐसा कहतेहैं,इसप्रकार उपसंहार ।' समाप्ति '। करते हैं । तैसे "तस्यैव योऽयमशरीरः प्रज्ञात्मेति" जो यह अशरीर प्रज्ञारूप आत्माहै, इसप्रकार कथनकिये तिसही आत्माकी "यश्चासावादित्य एकमेव तदिति" जो यह सूर्य्यविषे है तिसको एकही जानना, इसप्रकार एकता कहीहै । यहां भी "कोयमात्मा" कौन यह आत्माहै, इसप्रकार आरम्भकरके "प्रज्ञानंब्रह्मेति" प्रज्ञानब्रह्महै, इसप्रकार तिसकी प्रज्ञारूपताकोही देखावेंगे । ताते कर्मका असम्बन्धी आत्मज्ञान नहींहै, अरु अन्यथा ।' कर्मका असम्बन्धी होनेसे।' पुनरुक्तिदोषसे अनर्थता होवेगी । कैसे अनर्थता है कि "प्राणोवाअहमस्म्येष" यह प्रसिद्ध प्राण मैं हों, । इत्यादिरूप ब्राह्मण से । अरु "सूर्य आत्मा" सूर्य आत्मा है, । इस मन्त्रभाग से निर्द्धार किये आत्मा का "आत्मा वा इदमेक एवाग्र आसीत्" यह आगे निश्चय करके एकही आत्मा था, । इत्यादि ब्राह्मण भागसे "कोयमात्मेति" इस प्रश्नपूर्वक पुनः निर्द्धार करना पुनरुक्ति दोष है, सोई अनर्थता है, इस प्रकार जो कहे [सोई शंकाका परिहार ।' समाधान '। करते हैं] सो बने नहीं, क्योंकि तिसही आत्मा के अन्य धर्म विशेषके निर्द्धारणार्थ "कोयमात्मा" यह प्रश्नरूप श्रुति ।' । होने से तिस वाक्य को पुनरुक्ति दोष नहीं । कैसे पुनरुक्ति दोषका अभाव है ।' ऐसा पूछे तो '। कि तिसही कर्म सम्बन्धी आत्माके जगत् की उत्पत्ति स्थिति अरु संहारादिक धर्म विशेष के निर्द्धारणार्थ ।' उक्त श्रुतिके ।' होने से, वा [अन्यप्रकारसे भी पुनरुक्ति दोषका परिहार करतेहैं] केवल आ-

त्मा के उपासनार्थ होने से, अर्थात् "आत्मा" इत्यादिरूप जो ग्रन्थका समूह है सो कर्म से अन्य ठिकाने आत्मा की उपासना की अप्राप्तिके हुये, अरु कर्म के प्रसङ्ग बिषे।'आत्मा की उपासना का विधान न किया होने से केवल आत्मा भी उपासना करने के योग्यहै। इस अर्थ बिषे भेदअरु अभेदकी उपास्यतासे, वा एकही आत्मा कर्म बिषे भेद दृष्टिवाला।'अर्थात् इदं प्रत्यय के विषयरूपसे उपास्य'। सोई अकर्म काल बिषे।'अर्थात् देहादि अनात्मा विषयक अहं भावके अभावकाल बिषे अरु श्रवणज्ञान-जन्य अपरोक्षज्ञान काल बिषे।' अभेदता से।'अहं प्रत्ययकी वि-षयतारूप से।' भी उपासना करने योग्य है। इसप्रकार पुनरुक्ति दोष का अभाव है। अरु "विद्याञ्चाविद्याञ्च यस्तद्वेदोभयंसह। अविद्यया मृत्युन्तीर्त्वा विद्ययामृतमश्नुते" जो विद्या अरु अ-विद्या इन दोनों को साथही अनुष्ठान करने योग्य जानता है सो अविद्या से मृत्युको तरिके विद्या करके अमृत (मोक्ष) को पावता है,। अरु "कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छतं समाः" यहां कर्मों को करता हुआ शत १०० वर्ष पर्यन्त जीवने की इच्छा करे,। इस प्रकार वाजसनेयी।'यजुर्वेदियों की।' संहिता बिषे कहा है। अरु जिस करके।'प्रत्यक्ष, अरु उक्त आदिक अनेक श्रुतियों के प्रमाणसे।' मनुष्यों की शतवर्ष से अधिक आयु नहीं, एतदर्थ कर्म के परित्याग से आत्मोपासना करनी॥ अरु जो कहे कि "तावन्ति पुरुषायुषोऽह्वा सहस्राणि भवन्ति" तिससे पुरुषकी आयु के सहस्र दिवस होवे हैं,। इसप्रकार पुरुष का आयु शतवर्ष का देखाया है। सो आयु कर्म से ही व्याप्तहोताहै, तिसमें प्रमाण "कुर्वन्नेवेहकर्म्माणि जिजीविषेच्छतꣳ समाः" "यावज्जीवमग्निहोत्रं जुहोति" "यावज्जीवं दर्शपौर्णमासाभ्यां यजेत" यहां कर्म को करता हुआही सौवर्ष जीवने को इच्छे, जीवन पर्यन्त अग्निहोत्र को होमता है, जीवन पर्यन्त दर्श पौर्ण-मास करके यजन करे, इत्यादिरूप कर्म मन्त्रों ने दिखाया है।

अरु " तं यज्ञपात्रैर्दहन्तीति च" तिसको यज्ञ के पात्रमें दहन करे, । अरु तीनऋण श्रुतिसे ।' प्रख्यात हैं '। तहां "व्युत्थायाथ भिक्षाचर्यं चरन्तीति" व्युत्थान करके ।' गृहस्थाश्रम से उठके'। पीछे भिक्षाटन को करते हैं, । इत्यादि संन्यासादिकों के प्रतिपादक जे शास्त्र हैं, सो आत्मज्ञानकी श्रुति परायण अर्थ वाद है, वा अनधिकारी के अर्थ है, [इस ।' वादी के ।' कथनको सिद्धान्ती परिहास करैहै] सो कहना बने नहीं, क्योंकि परमार्थता रूप आत्मा के विज्ञान के होते फल के अदर्शन हुये क्रिया का असंभव है ।' अर्थात् "आत्मैवेदं सर्वम्" यह सर्व ।' नामरूपात्मक जगत् ।' आत्मरूपही है, इत्यादि श्रुतियों के प्रमाण से समस्त नामरूपात्मक जगत् को परमार्थ करके आत्मरूपताही है इस प्रकार जब एक अद्वैत आत्मा का विज्ञान होता है तब ' पूर्व अज्ञानदशा में भासता रहा जो आत्मा से इतर करके यज्ञादि कर्मोंका फल स्वर्गादि तिनका आत्मा से इतर करके दर्शन का अभाव होता है, अरु कर्म जो होता है सो स्वर्गादि फलको सत्य जानके तिनकी कामना से होता है, अरु उक्त प्रकार जब सर्व रूपसे सुशोभित एक अद्वैत आत्माके विज्ञान से स्वर्गादि दृष्टिका अभावहुआ तब तिसकी कामनासे होनहारकर्म तिनकाहोना तिस आत्मविज्ञानी के यहां संभवे नहीं।' अरु जो तैंनेकहाथा कि कर्मीको आत्माका ज्ञान होता है अरु सो आत्मज्ञान कर्म का सम्बन्धी है इत्यादिक, सो बनेनहीं, क्योंकि " ह्याप्तकामं सर्वसंसार दोष वर्जितं ब्रह्माहमस्मि" पूर्णकाम सर्वसंसारके दोषोंसे रहित ब्रह्म मैं हूं, इसप्रकार ।' अपनेआप।' आत्मपने करके तत्त्व (ब्रह्म) के जानने से कर्मसे वा कर्त्तव्यसे अपने कुछ भी प्रयोजनको न देखनेवाले ज्ञानीको फलके अदर्शनहुये क्रिया सम्भवे नहीं ॥ अरु जो ऐसा कहे कि फलके अदर्शनहोने से भी विद्वान् ।' वेदकी '। प्रेरणाको प्राप्तहुआ होने से क्रियाको करता है, सो कहना बनेनहीं, क्योंकि प्रेरणाका अविषय आत्माका ज्ञानहै ताते। अरु अपने इष्टकीप्राप्ति

अरु अनिष्टकी निवृत्तिरूप प्रयोजनको देखताहुआ तिसके उपायकी इच्छावाला जो पुरुष होता है तिसको लोकविषे शास्त्रकी प्रेरणाका विषय देखाहै। परन्तु तिसके विपरीत प्रेरणाका अविषय ब्रह्मात्माका दर्शीनहीं।' अर्थात् जिस कामनावाले पुरुषको धनादिक इष्ट वस्तुकी प्राप्तिकी,अरु रोगादिक अनिष्टकी निवृत्ति की कामना है तिस पुरुषके अर्थ उपाय करने की शास्त्र आज्ञा करे हैं कि अमुक कर्म करने से धनादिक की प्राप्ति, अरु अमुक कर्म करने से रोगादिकों की निवृत्ति होवेगी ताते अपने प्रयोजनार्थ कर्म करो, ताते सकामी पुरष शास्त्रोक्त कर्म प्रेरणा का विषय लोक विषे देखा है। परन्तु तिस सकाम पुरुषसे विपरीत अकामी पुरुष कि जिसकी दृष्टिमें न तो कोई इष्टवस्तुहै न कोई अनिष्ट वस्तुहै, अरु तिसही कारणसे उसको प्रयोजनका अभाव है, क्योंकि, इष्ट अनिष्ट प्रयोजनादिक द्वैत भाव बिषे होता है सो उसको है नहीं ताते ब्रह्मआत्माके अभेद दर्शीको, इष्ट, अनिष्ट, प्रयोजन, ये सहित अपने कारण द्वैतभावरूप अविद्याके अशेष अभाव हुआ है तिस अकामी अभेददर्शी पुरुषको शास्त्रकी प्रेरणाका विषय लोकविषे देखानहीं "तस्य कार्यं न विद्यते"। अरु जब ब्रह्मात्मभावका दर्शी हुआभी पुरुष '।शास्त्रकी।' प्रेरणा को प्राप्तहोगा, तब प्रेरणाका अविषय हुआ हुआभी कोई पुरुष '।शास्त्रकी।' प्रेरणाका अविषय न होवेगा। अरु ऐसा होनेसे सर्व कर्म सर्व पुरुष करके सर्वदा करने केही योग्य होवेंगे। सो अनिष्ट हैं। अरु सो '।ब्रह्मात्मदर्शी।' विद्वान् किसी करकेभी प्रेरणा करनेको शक्य नहीं। '।अर्थात् ब्रह्मात्मदर्शी ब्रह्म भूतपुरुषको किसी प्रकारकी भी प्रेरणा करनेको किसीकी भी सामर्थ्य नहीं।'। क्योंकि [ननु अन्यके नियोज्य (प्रेरणाकेविषय) होनेके अभावहुये भी वेदवाक्यसे विद्वान्को नियोज्य होवेगा, इसप्रकार द्वितीय पक्षकी आशंका करके, ईश्वरभावको प्राप्तहुये तिस विद्वानको वेद की स्वरूपता के ज्ञानपूर्वक होने से अरु अपने वचनसे आप के

अरु "तं यज्ञपात्रैर्दहन्तीति च" तिसको यज्ञ के पात्रमें दहन करे, । अरु तीनऋण श्रुतिसे ।' प्रख्यात हैं '। तहां "व्युत्थायाथ भिक्षाचर्यं चरन्तीति" व्युत्थान करके ।' गृहस्थाश्रम से उठके'। पीछे भिक्षाटन को करते हैं, । इत्यादि संन्यासादिकों के प्रतिपादक जे शास्त्र हैं, सो आत्मज्ञानकी श्रुति परायण अर्थ वाद है, वा अनधिकारी के अर्थ है, [इस ।' वादी के ।' कथनको सिद्धान्ती परिहास करैहै] सो कहना बने नहीं, क्योंकि परमार्थता रूप आत्मा के विज्ञान के होते फल के अदर्शन हुये क्रिया का असंभव है ।' अर्थात् "आत्मैवेदं सर्वम्" यह सर्व ।' नामरूपात्मक जगत् ।' आत्मरूपही है, इत्यादि श्रुतियों के प्रमाण से समस्त नामरूपात्मक जगत् को परमार्थ करके आत्मरूपताही है इस प्रकार जब एक अद्वैत आत्मा का विज्ञान होता है तब ' पूर्व अज्ञानदशा में भासता रहा जो आत्मा से इतर करके यज्ञादि कर्मोंका फल स्वर्गादि तिनका आत्मा से इतर करके दर्शन का अभाव होता है, अरु कर्म जो होता है सो स्वर्गादि फलको सत्य जानके तिनकी कामना से होता है, अरु उक्त प्रकार जब सर्व रूपसे सुशोभित एक अद्वैत आत्माके विज्ञानसे स्वर्गादि दृष्टिका अभावहुआ तब तिसकी कामनासे होनहारकर्म तिनकाहोना तिस आत्मविज्ञानी के यहां संभवे नहीं।' अरु जो तैंनेकहाथा कि कर्मीको आत्माका ज्ञान होता है अरु सो आत्मज्ञान कर्म का सम्बन्धी है इत्यादिक, सो बनेनहीं, क्योंकि "ह्याप्तकामं सर्वसंसार दोष वर्जितं ब्रह्माहमस्मि" पूर्णकाम सर्वसंसारके दोषोंसे रहित ब्रह्म मैं हूं, इसप्रकार ।' अपनेआप।' आत्मपने करके तत्त्व (ब्रह्म) के जानने से कर्मसे वा कर्त्तव्यसे अपने कुछ भी प्रयोजनको न देखनेवाले ज्ञानीको फलके अदर्शनहुये क्रिया सम्भवे नहीं ॥ अरु जो ऐसा कहे कि फलके अदर्शनहोने से भी विद्वान् ।' वेदकी '। प्रेरणाको प्राप्तहुआ होने से क्रियाको करता है, सो कहना बनेनहीं, क्योंकि प्रेरणाका अविषय आत्माका ज्ञानहै ताते। अरु अपने इष्टकीप्राप्ति

अरु अनिष्टकी निवृत्तिरूप प्रयोजनको देखताहुआ तिसके उपायकी इच्छावाला जो पुरुष होता है तिसको लोकबिषे शास्त्रकी प्रेरणाका विषय देखाहै। परन्तु तिसके विपरीत प्रेरणाका अविषय ब्रह्मात्माका दर्शीनहीं।' अर्थात् जिस कामनावाले पुरुषको धनादिक इष्ट वस्तुकी प्राप्तिकी,अरु रोगादिक अनिष्टकी निवृत्ति की कामना है तिस पुरुषके अर्थ उपाय करने की शास्त्र आज्ञा करे हैं कि अमुक कर्म करने से धनादिक की प्राप्ति, अरु अमुक कर्म करने से रोगादिकों की निवृत्ति होवेगी ताते अपने प्रयोजनार्थ कर्म करो, ताते सकामी पुरष शास्त्रोक्त कर्म प्रेरणा का विषय लोक बिषे देखा है। परन्तु तिस सकाम पुरुषसे विपरीत अकामी पुरुष कि जिसकी दृष्टिमें न तो कोई इष्टवस्तुहै न कोई अनिष्ट वस्तुहै, अरु तिसही कारणसे उसको प्रयोजनका अभाव है, क्योंकि, इष्ट अनिष्ट प्रयोजनादिक द्वैत भाव बिषे होता है सो उसको है नहीं ताते ब्रह्मआत्माके अभेद दर्शीको ,इष्ट, अनिष्ट, प्रयोजन, ये सहित अपने कारण द्वैतभावरूप अविद्याके अशेष अभाव हुआ है तिस अकामी अभेददर्शी पुरुषको शास्त्रकी प्रेरणाका विषय लोकबिषे देखानहीं "तस्य कार्यं न विद्यते"। अरु जब ब्रह्मात्मभावका दर्शी हुआभी पुरुष '।शास्त्रकी।' प्रेरणा को प्राप्तहोगा, तब प्रेरणाका अविषय हुआ हुआभी कोई पुरुष '।शास्त्रकी।' प्रेरणाका अविषय न होवेगा। अरु ऐसा होनेसे सर्व कर्म सर्व पुरुष करके सर्वदा करने केही योग्य होवेंगे। सो अनिष्ट हैं। अरु सो '।ब्रह्मात्मदर्शी।' विद्वान् किसी करकेभी प्रेरणा करनेको शक्य नहीं। '।अर्थात ब्रह्मात्मदर्शी ब्रह्म भूतपुरुषको किसी प्रकारकी भी प्रेरणा करनेको किसीकी भी सामर्थ्य नहीं।'। क्योंकि [ननु अन्यके नियोज्य (प्रेरणाकेविषय) होनेके अभावहुये भी वेदवाक्यसे विद्वान्को नियोज्य होवेगा, इसप्रकार द्वितीय पक्षकी आशंका करके, ईश्वरभावको प्राप्तहुये तिस विद्वानको वेद की स्वरूपता के ज्ञानपूर्वक होने से अरु अपने वचनसे आप के

नियोज्यपने के हुये एक ठेकाने कर्म अरु कर्त्ताके विरोधसे विद्वान्को वेदवाक्यसे नियोज्यपना सम्भवे नहीं । इसप्रकार कहते हैं] वेदको भी '। तिस विद्वान्से ।' उत्पन्न होनेपनाहै ताते '। अर्थात् जिस विद्वान्के स्वरूप से वेदकी उत्पत्ति है तिसपर वेदकी आज्ञा चले नहीं ।' । अरु जिस करके अपने विज्ञानसे उत्पन्न हुये वचनों से आप प्रेरणा को पात्रता नहीं, अरु [किंवा व्याकरणादिकों को तिनके कर्त्ता पाणिनि आदिक करके ज्ञेय (जानने योग्य) वस्तुके एकदेशको विषय करनेपनेके देखने से ईश्वरजन्य वेदको भी ईश्वर करके ज्ञेयवस्तुरूप एकदेशको विषय करनेकरके अल्पज्ञभावसेभी अधिक जाननेवाले विद्वान्रूप ईश्वर का नियामकपना अयुक्त है । इसप्रकार कहते हैं] बहुत अर्थका वेत्ता स्वामी भी अविवेकी भृत्यसे प्रेरणाको पात्रता नहीं । अरु जो ऐसा कहे कि वेदको नित्यताके हुये स्वतन्त्र होनेकरके सर्व के प्रति प्रेरणा करनेका सामर्थ्य है, सो कहना बनेनहीं, क्योंकि निकटही उक्त दोषहै ताते । अरु प्रेरणा से रहित विद्वान्को भी कर्म कर्त्तव्यहै, तब सर्व पुरुषों करकेसर्वदा विहित करनेकोयोग्य होवेगा यह कथनकिया दोष निवारण करनेको अशक्यहीहै अरु जो [असंगीब्रह्मरूपताकेज्ञानको अरु कर्मकी कर्त्तव्यताको शास्त्ररचित होने करके दोनों शास्त्रों के भी प्रमाणपने के अविशेषसे कदाचित् '। किसीसमय ।' आत्मज्ञानका अरु कदाचित् '। किसी समय ।' कर्मका अनुष्ठान होवेगा।इसप्रकार बादी शंकाकरताहै] कहे कि सो आत्मज्ञानभी शास्त्रनेही कहाहै, अर्थात् जैसे कर्मकी कर्त्तव्यता शास्त्रने कहीहै, तैसे तिसही कर्मीको ज्ञानका भी शास्त्र करके विधानकियाहै, सो बनेनहीं, क्योंकि शास्त्रको विरुद्ध धर्मकी बोधकताका असंभवहै '। अर्थात् आप्तपुरुष वा महत्पुरुषका वाक्य शास्त्रको एकही पुरुषके अर्थ परस्परमें विरुद्ध ऐसे धर्मका उपदेश करना संभवेनहीं ।' । अरु एकही शास्त्रविषे अग्निकी शीतलता अरु उष्णतावत् पुण्य पापका सम्बन्धीपना अरु तिससे विपरीत-

पना बोधनकरनेको शक्य नहीं। अरु [इसप्रकार प्रथम विद्वान्को प्रेरणाके अविषय अकर्त्ता आत्माका दर्शी होने से, अरु प्रयोजनके अर्थीहोनेके अभाव से कर्म है नहीं, इसप्रकार कहा। अब अविद्वान्को आप से इष्टकी प्राप्ति अरु अनिष्टकी निवृत्तिरूप प्रयोजनके अर्थी होनेके अभावहुयेभी "स्वर्गकामोयजेत" स्वर्गकी कामनावाला यज्ञकरे, इस शास्त्रकरकेही प्रयोजनका अर्थीपना सिद्धकरते हैं, यह आशंकाकरके, स्वभाव से प्राप्त प्रयोजन के अर्थीपनेके अनुवादसे तिसका उपायमात्र शास्त्रकरके बोधनकिया है, परन्तु सो प्रयोजनका अर्थीपना सिद्धकरते नहीं। अन्यथा।'अर्थात् स्वभावसे बिना शास्त्रकरकेही प्रयोजन के अर्थीपनेको बोधन कियेहुये'। शास्त्रकेज्ञानसे रहित पुरुषको तिसप्रयोजनकी अर्थिता न होवेगी, इसप्रकार कहतेहैं। यहां चिकीर्षाशब्दसे फलकीइच्छामात्रही कहते हैं, परन्तु करनेकी इच्छानहीं क्योंकि फल बिषे तिस कर्त्तव्यताका अभाव है ताते] अपने इष्टके प्राप्तकरने की इच्छा अरु अनिष्टके निवृत्ति करने की इच्छा शास्त्रकरके करीहुई नहींहै, क्योंकि सर्वप्राणियोंको तिसके दर्शन से। अरु सो दोनों ।'इच्छा'। जब शास्त्रकृतहोय, तब गोपाल (शूद्र) आदिकोंको सो न होनीचाहिये, क्योंकि उनको शास्त्रकी ।'अनधिकारतासे'। अज्ञातहै ताते [ननु, शास्त्र जोहै सोजब कृत अरु अकृतके सम्बन्धीपनेको अरु तिससे विपरीतपनेको विरुद्धहोने से बोधन करता नहीं, तब कृत अरु अकृतके असम्बन्धीपनेकोही बोधनकरेगा। यह आशंकाकरके, अरु तिसको अन्य प्रमाणसे असिद्धहोनेकरके अवश्य शास्त्ररूप प्रमाणकरके बोधनकरने की योग्यताके कहने योग्यहुये, अन्य प्रमाणकरके सिद्ध तिससे विपरीतवस्तुको शास्त्रकरके बोधन करनेकी योग्यता नहीं है, विरुद्धहोनेसे। इसप्रकार कहतेहैं, यहां यह अर्थ है कि निश्चयरूप अर्थके कियेहुये "यह किया, यह कर्त्तव्यहै" इसज्ञानका बिरोधी आत्मज्ञान, जब शास्त्रकरके किया तब तिस ज्ञानकी सिद्धिके अर्थ तिससे विरुद्धकर्त्त-

व्यताको कैसे उत्पादनकरेगा] जो आपसेही अप्राप्तवस्तु है सो शास्त्रकरके बोधनकरने के योग्यहै । अरु जब सो निश्चय के अर्थ कियेहुये, यहकिया अरु यह कर्त्तव्य है, इसप्रकारके ज्ञानका जो विरोधी सो आत्मज्ञान शास्त्रने ।'प्रतिपादन'। किया, तब तिस ।'आत्मज्ञान से'। विरुद्ध कर्त्तव्यताको सो शास्त्र 'अग्निबिषे शीतलतावत् अरु सूर्यबिषे अन्धकारवत् कैसे उत्पन्न ।'वा प्रतिपादन'। करेगा, किन्तु किसीप्रकार भी करे नहीं । अरु जोकहै [विधिके अभावसे वेदान्तको, तैसे ।'अन्यविधिशास्त्रवत्'। आत्माकी बोधकता नहीं है, यह आशंकाकरके, विधिको पुरुषको कर्त्तव्यके सम्मुखकरनेरूप अर्थवाला होने से, अरु यहां आत्मज्ञानके सम्मुखकरनेअर्थ विधिरूप अर्थवादके सद्भावसे, अरु स्वरूप बोधक तत्परवाक्यके भी सद्भावसे ऐसे बने नहीं, यह उत्तरसिद्धान्ती कहेहै।] तैसे आत्माकोशास्त्रबोधन करताहीनहीं, सो कहनाबने नहीं,क्योंकि "। स म आत्मेति ।" सो मेरा आत्माहै, । इसप्रकार जानना अरु "। प्रज्ञानंब्रह्म ।" प्रज्ञान ब्रह्महै, । इसप्रकार समाप्ति से । अरु "तदात्मानमेवावेत्" "तत्त्वमसि" तिस आत्मा कोही जानना, सो तूहै, । इत्यादि वाक्योंको तिस ।'आत्माके बोधन'। परायणताहै ताते । अरु उत्पन्नहुये ब्रह्मात्माके विज्ञानको ।'सर्वप्रकार'। अबाधितता है ताते, सो आत्मज्ञान उत्पन्नहुआ नहीं वा भ्रमरूप है, इसप्रकार कहनेको शक्यनहीं । अरु जोकहै [विद्वान्को प्रयोजनकी तृष्णाके अभावसे कर्मबिषे प्रवृत्ति नहींहै,इसप्रकारकहा। तब तिसकर्म के त्यागबिषे भी प्रयोजनके अभावसे तहां ।'निष्कर्मता वा आत्मविचार बिषे ।' भी विद्वान्कीप्रवृत्ति न होवेगी । इस प्रकार वादी शंकाकरताहै] विद्वान्को कर्मके त्यागबिषे भी प्रयोजनके अभावकी तुल्यताहै, क्योंकि "नाकृतेनेहकश्चनेति" तिसका यहांकर्मसे अर्थनहींहै,अरु कर्मके अभावसे कोईभी अर्थ नहीं है,।इसगीतास्मृतिकेप्रमाणसे। अरु "यआहुर्विदित्वाब्रह्मव्युत्थानमेवमेव कुर्य्यादिति" ब्रह्मको जानके संन्यासकोही करना,। ऐसा

जो कहतेहैं तिनकोभी यहप्रयोजनका अभावरूपदोष तुल्यहीहै, । सो बनेनहीं [कर्मकेत्यागको व्यापाररूप होने से, अरु व्यापारको क्लेशरूपहोनेसे तिनकाअनुष्ठान प्रयोजनसे अपेक्षित ।'प्रयोजनकी अपेक्षावाला'। होवेगा। परन्तु यह नहींहै, किन्तु क्रियाका अभाव-मात्र उदासीनता रूपहै, अरु तिसको स्वरूपस्थ होनेकरके स्व-रूपसेही प्रयोजनता होने करके अन्य प्रयोजन का अपेक्षावान् पना नहीं है, इसप्रकार सिद्धान्ती परिहार करता है] क्योंकि संन्यासको केवल अक्रियमात्र रूपता है ताते । अरु अविद्यारूप निमित्तका कियाही प्रयोजनका भावहै वस्तुका धर्म नहीं, क्योंकि सर्व प्राणधारियों के मध्य तिस '। प्रयोजनको ।' देखते हैं ताते । अरु प्रयोजन की तृष्णासे प्रेरणा को प्राप्त हुये पुरुषके, वाणी, मन, शरीर प्रवृत्ति देखते हैं । '। अर्थात् पुरुषोंकी जो कर्मादिकों विषे प्रवृत्ति है सो अविद्याजन्य प्रयोजन की प्रेरणासे है ।' । अरु "सोऽकामयत जाया मे स्यात्" सो मुझको जाया (स्त्री) होवे, इसप्रकार कामना करताहुआ , । अरु इनसे आदिले " उभेह्येते एषणेति" यह दोनों '। साध्यसाधनरूप एषणाहीहै,। इस वाक्य से पुत्र अरु वित्तादिक है सो पांक्तरूप काम्यकर्म ही है । इसप्र-कार वाजसनेयि (बृहदारण्य) ब्राह्मविषे निश्चय कियाहै ताते । [इसप्रकार क्रिया के हेतुको देखायके तिसके अभावसेही वि-द्वान् को क्रियाका अभाव विनाही यत्नके स्वतः ही सिद्धहै ऐसा कहते हैं। यहां यह अर्थ है कि , स्त्री , पुत्र, दैववित्त, मनुष्यवित्त, अरु कर्म, इन पांच करके साधते हैं, ऐसीजो ।'यज्ञादिरूप'। वैदिक प्रवृत्ति ।।'अर्थात् यज्ञादि कर्म के उक्त पांच मुख्यकारक अरु यज्ञ-द्वारा स्वर्गादिलोक साधक'।। तिनको पांक्तलक्षण कहते हैं।' अर्थात् उक्त पांचोंकरके जो साध्यहोवे तिसको पांक्तलक्षण कहते हैं।' । सो पांचकी संख्याके सम्बन्धसे गौणी वृत्तिकरके पंक्तिछन्द के आरोपसे, अरु " पंचाक्षरापंक्तिर्पांक्तो यज्ञ इति श्रुतेः " पांच अक्षरवाला पंक्ति छन्दहै, अरु पांक्त ।' अर्थात् पंक्ति छन्दके सदृश

पांच संख्यावाला।' यज्ञहै, इस श्रुतिसे] विद्वान्‌को अविद्यादिक दोषके अभाव से, अविद्या काममय दोषरूप निमित्तवाली पांक्त रूप, वाणी, मन, अरु शरीर, इनकी प्रवृत्तिका असंभव है, अरु तिसके अभाव से तिस।' विद्वान्'। का अक्रियामात्ररूप संन्यास विनाहीं यत्नके सिद्धहै, परन्तु सो यागादिकोंवत् अनुष्टेय भावरूप नहीं है, किन्तु [ऐसे उदासीनतारूप क्रिया के अभाव को पुरुषका स्वभावरूप होने करके अयत्नसे सिद्धताकेहुये तिसको प्रयोजन की अपेक्षा नहीं, इसप्रकार कहते हैं] सो विद्यावत् पुरुषका धर्म कहिये स्वभाव है, ताते तिसविषे प्रयोजन खोजने को योग्य नहीं।' अर्थात् प्रयोजन की अपेक्षा नहीं'। अरु [अज्ञान के कार्य की, अज्ञानकी निवृत्तिके हुये अयत्नसे ही निवृत्ति होती है, इस अर्थ विषे दृष्टान्त को कहते हैं] जैसे अन्धकार विषे प्रवृत्तहुये पुरुषको प्रकाशके उदयहुये जो गर्त्तकादवकंटकादिकों विषे पतनहै सो "किस प्रयोजनवाला होवेगा"।' अर्थात् मनुष्य को जो गर्त्तादिकों में पतनहै तिसका निमित्त अन्धकारहै, तिसके अभाव से पुनः अहेतुक पतन होवे नहीं, तैसेही अज्ञान अरु तज्जन्य प्रयोजनरूप अन्धकार के अभावहुये विद्वान्‌का अहेतुक कर्मरूप गर्त्तादि विषे पतन संभवे नहीं'।। इस प्रश्नके योग्यनहीं है। अरु जो ऐसा कहै, तब व्युत्थान कहिये संन्यास सो अर्थ से प्राप्त होनेकरके विधिरूप अर्थवाला नहीं है। इसप्रकार होने से जब गृहस्थाश्रम विषे परब्रह्म का विज्ञानहुआ तब संन्यासके न करनेवाले तिस ज्ञानीकी तहांही स्थिति होवे, ताते अन्यठेकाने गमन।।' अर्थात् संन्यास पूर्वक विचरना नहीं होवेगा सो बने नहीं, क्योंकि गृहस्थाश्रम है सो कामना का कियाहै "एतावान् वैकाम इति" इतनाही निश्चय करके कामहै, एतदर्थ यह दोनों एषणाही हैं, इस निश्चय से [इसप्रकार संन्यासरूप लिंगविषे भी अभिमान के अभाव से तिसकी भी असिद्धिहै, यह नहीं कहा चाहिये, अरु सर्व से अभिमानरहित होने करके सर्व के सम्बन्ध

से रहित होनाही परमहंस नामक संन्यास का लक्षण है, लिंग (चिह्न) का धारण करना [संन्यासका] लक्षण नहीं, क्योंकि "न लिंगं धर्मकारणम्" लिंग (चिह्न) धर्मका कारण नहीं,। यह स्मृतिका प्रमाण है। ताते लिंग विषयक अभिमान से भी रहित विद्वान् को संन्यास सिद्धही है, ऐसा कहते हैं] कामनारूप निमित्तसे हुये वित्त अरु पुत्रादिक तिनके सम्बन्धके नियमका अभावमात्रही संन्यास कहते हैं। ताते अन्य ठिकाने गमन ॥ 'अर्थात् आश्रमान्तरका वा लिंगका धारण करना' ॥ संन्यास कहते नहीं। याते संन्यासको न करनेवाले अरु विद्याकी उत्पत्तिवाले पुरुष की गृहस्थाश्रम विषेही स्थितिनहीं है। [तब विद्वान् को गुरुसेवादिकों विषे भी अभिमान नहीं होवेगा, यह आशङ्काकरके, यह हमको इष्टापत्तिहै, ऐसा कहते हैं।] इस कथन करके विद्वान्को गुरु शुश्रूषा अरु तपका असंभव सिद्धहुआ [ननु, तुम्हारे मतविषे पुत्रादिकोंके सम्बन्धके नियमसे रहित अरु देह धारणके अर्थी संन्यासीको भी परिग्रह (संग्रह) की निवृत्तिके अर्थ भिक्षाटनादिकही है, ऐसा नियम अंगीकारहोताहै। तैसे अभिमानसे शून्य गृहस्थको भी देह धारणार्थ गृहविषेही स्थितरहो, संन्यासीपने के विशेष से नहीं। इसप्रकार वादी कहे है] यहां कईएक गृहस्थ भिक्षाटनादिकों के भयसे अरु तिरस्कारसे भयभीतहुये अपनी सूक्ष्मदृष्टिवान्ताको देखावतेहुये उत्तर कहते हैं। देहधारणमात्रार्थ जो संन्यासीहै तिसको भिक्षाटनादिकके नियम के देखनेसे साध्य अरु साधनसम्बन्धी दोनों एषणासे रहित अरु देहमात्रकेधारणार्थभोजन अरु आच्छादनमात्रकेअर्थउपजीविका करनेवाले गृहस्थकी भी गृहविषे स्थितिहोवो, सो बनेनहीं [तहां सिद्धान्ती आय, तिस इसप्रकारके हुये गृहस्थ विद्वान्को स्त्रीका परिग्रहहै वा नहीं, इसप्रकार दो विकल्पकरके प्रथम पहिले विकल्पविषे दूषण देखावे हैं] क्योंकि अपने गृहविशेषके परिग्रहका नियम कामनाका कियाहै ताते, इसप्रकार इसका उत्तर कहाहै।

अरु [द्वितीयपक्ष भी बनेनहीं, क्योंकि स्त्रीके परिग्रहवाले कोही धनसंग्रह करने का अधिकार है, अरु स्त्री के अभावहुये अर्थ (प्रयोजन) से द्रव्यके संग्रहकी निवृत्तिसे तिस द्रव्य संग्रह करने के अभाव हुये अन्य प्रकारसे जीवनकी असिद्धिहोने से, अर्थ से ।'अर्थात् उदरपूर्णादि प्रयोजनसे।'।भिक्षाटनादि करनेका नियमही सिद्ध होताहै, ऐसा कहते हैं । यहां पुत्रादिकोंकरके संग्रह किये द्रव्यसे जीवनहोहु, ।' आप द्रव्योपार्जनादि मतकरो।' यह शङ्का करनेको योग्यनहीं, क्योंकि उन पुत्रादिकोंकरके भी अपने अपने भावसेमानेहुये द्रव्यविषे सम्बन्धका अभावहोनेसे अपने द्रव्यको भी परके द्रव्यकी तुल्यतासे,तहां भी भिक्षुकपनेके नियमसे। यह अर्थहै] अपने गृहविशेषके परिग्रह (स्त्री) के अभावहुये शरीर धारणमात्र के किये भोजनाच्छादनार्थी गृहस्थका अपने परिग्रह विशेष (स्त्री) के अभावहुये सन्यासीपनाहीहै । अरु जो ऐसाकहे [अन्य तो संन्यासीको भी भिक्षाटनादिकों विषे " भिक्षाटनादौ सप्तागारानसङ्क्लृप्तान् " असंकल्पित सात गृहोंबिषे जावे, ।।'अर्थात् जो संन्यासी (सर्वसंकल्प त्यागी) है सो भिक्षार्थ जाने से पूर्व यह संकल्पनकरे कि भिक्षार्थ अमुक २ केगृह जावेंगे, निःसंकल्प हुआ सात गृहमें जावे तिनमें जो भिक्षा न मिले तिसमें ही संतोषमान तिस दिवस निर्वाहकरे अरु जो कदापि दैवयोगसे उन सातगृहोंमेंसे अल्पही अन्न प्राप्तहोयतो वा न होयतो सातसे अधिकगृहोंमें न जावे, अनुद्विग्नमन हुआ आत्मविचार समाधि में स्थितहोय। । इत्यादिक नियमअरुशौचादिकविषे । गृहस्थसे । चतुर्गुण अधिकका नियम पायके निर्वाहणार्थ जैसे अंगीकार करते हैं तैसे " यावज्जीवमग्निहोत्रंजुहुयात् " यावत् जीवता रहै तावत् अग्निहोत्रकी आहुति करतारहै, । इत्यादिक श्रुति वाक्यके बलसे पापके निवारणार्थ निष्काम गृहस्थ विद्वान्की भी नित्य कर्मविषे नियमसे प्रवृत्तिहोनी चाहिये । जोइसप्रकार कहतेहैं तिन के मतका अनुवाद करतेहैं] जैसे सन्यासी को शरीरके धारणरूप

प्रयोजनवाली भिक्षाटनादिक में प्रवृत्ति विषे अरु शौचादिकों विषे नियम है तैसे [पूर्व मतविषे संन्यासको न करने वाले विद्वान् की गृह बिषेही स्थिति की शंकाकिया, अरु इसमत बिषे तो अग्निहोत्रादिकों का अनुष्ठानभी विद्वान्को कर्त्तव्यहै, इसप्रकार पूर्ववादी शङ्काकरेहैं] निष्कामगृहस्थ विद्वान्को भी पापकेक्षयार्थ नित्य कर्मोंविषे नियमसे प्रवृत्तिहोहु, क्योंकि "यावज्जीवमग्निहोत्रंजुहोति" यावत् जीवे तावत् अग्निहोत्र को करे, इत्यादि श्रुतिकरके कर्मोंविषे प्रेरणा है ताते, यह [पूर्व संग्रहकी निवृत्ति के अर्थ भिक्षाटनादिकों को विषय करनेवाला, अरु शरीर के धारणरूपदृष्ट (इसलोकसम्बन्धी) प्रयोजनवाला नियमदृष्टांत करके कहा। अरु यहां तो सो भिक्षाटनादिक मत सत्तगृहपने आदिकको विषय करनेवाला अरु अदृष्ट (परलोकसम्बन्धी) अर्थ वाला नियम दृष्टान्तपने करके कहा। इस भेदको अब सिद्धान्ती दूषण देताहै] कथन विद्वान्को प्रेरणा का अविषय होने करके। अरु [तिस विद्वान् को सर्वका नियासक ईश्वररूप होनेसे नियम का विषयपना नहीं है, इत्यादिरूप उत्तर पूर्व कहा है, ऐसाकहते हैं] प्रेरणा की विषयताके अशक्य होनेसे पूर्व कहा है। अरुजो कहे कि इसप्रकार होनेसे "यावज्जीवमग्निहोत्रं जुहोति" यावत् जीवे तावत् अग्निहोत्र करे, । इत्यादिक नित्य कर्मकी विधिकी व्यर्थता होवेगी, सो कहनाबने नहीं, [अविद्वान् को वो (नित्य कर्मके (नियम की विषयता है।' अर्थात् अविद्वान् के अर्थ (नित्य कर्म करनेकी प्रेरणा विधिहै, विद्वान् के अर्थ नहीं (ताते नित्य कर्मकी नियामक श्रुति व्यर्थनहीं (इस प्रकार कहतेहैं] क्योंकि तिस विधिको अविद्वान् परत्व होनेकरके अर्थवान्पना है। अरु जो पूर्व [तिस पूर्वोक्त प्रतिबन्धके निवारणार्थ सिद्धान्ती तिसका अनुवाद करके दूषण देते हैं। तहां यह अर्थ है कि आचमन की विधिसे आचमन करने में प्रवृत्तहुये पुरुष को वांछित जो तृषा का विनाश सो होताहै, तिसको तिस प्रवृत्ति करके अन्य प्रयोजन

से अर्थवान्‌पना(प्रयोजन) नहीं, अर्थात् तिस अर्थवान्‌पना प्रयोजनहै, आचमन विषे प्रवृत्तिकी कारणता नहीं है । तद्वत् जीवनार्थ भिक्षाटनादिक बिषे प्रवृत्तहुये पुरुषको जो तहां नियमहै सो भिक्षादिकों विषे प्रवृत्ति का कारण नहीं, किन्तु तिस जीवनरूप प्रयोजनका कारणहै] शरीर धारणमात्र बिषे प्रवर्तहुये संन्यासी की प्रवृत्तिका नियमितपना कहाथा सो प्रवृत्ति का कारण नहीं, आचमनरूप कर्मविषे प्रवर्त्त हुये पुरुषकी तृषाकी निवृत्तिवत्, तिस का अन्य प्रयोजनार्थ होना नहीं, ऐसाजानते हैं ।।'अर्थात् "आचामेति" आचमनकरो, । यह श्रुतिअन्तर शुद्धि आदि प्रयोजनको लखावती कर्मोंको फलवाद कहती आचमन रूप क्रिया को नियमकरे है, अरु उस आचमनके करनेसे तृषाकी निवृत्तिरूप दृष्ट फल को प्रत्यक्ष देष तिस प्रयोजनसे आचमनरूप क्रियाविषे प्रवृत्तहुये पुरुष को उस नियमित विधि वाक्यविषे प्रवृत्त होनेसे तिसको तिसके अन्य अदृष्ट फलवान्‌पना न होनेसे केवल तृषाकी निवृत्तिरूप प्रयोजनरूप अर्थवान्‌पना है, तैसे ही " भिक्षाचर्यञ्चरन्ति " वा "भिक्षाटनादौ सप्तागारानसङ्क्लृप्तान् " इत्यादि नियमित विधि वाक्य है अरु तिनके फलवाक्य भीहै परन्तु भिक्षान्नसे क्षुधारूप रोगकी निवृत्ति पूर्वक देहधारणमात्र प्रयोजनवान् अरु उसके अन्य दृश्य वा अदृश्य फलकी तृष्णा से निवृत्त अप्रयोजनवान् संन्यासी की जो उन भिक्षाटनादिक नियमित विधि वाक्य में प्रवृत्तिहै, सो प्रवृत्ति के प्रयोजन से नहीं, किन्तु उस विद्वान् संन्यासीका शरीर धारणमात्रप्रयोजन सेहैं, अरु " केवलं शारीरंकर्म्म कुर्वन्नाप्नोति किल्बिषम् " इत्यादि स्मृति प्रमाणसे, उस शरीर धारणमात्र प्रयोजनसे, अरु सो भी " पश्यत्यन्यशरीरवत् " इत्यादि प्रमाणसे, अन्य शरीरों की यात्रादि के द्रष्टापनेसे स्वशरीर की यात्राको भी निरभिमानता से देखतसन्ते, जो भिक्षाटनादिक नियमित विधि वाक्य में प्रवृत्ति है सो किल्बिष (प्रवृत्ति) का कारण होवे नहीं

ताते उस विद्वान्की जो शरीर धारणमात्र प्रवृत्ति भासे है सो उसविषे प्रयोजनवान् अरु अर्थवान्पने का हेतु (कारण) होवे नहीं । ॥ अरु [प्रवृत्ति जब अन्य हेतुसे सिद्ध है तब प्रेरणासे क्या प्रयोजन है, इसहीसे दर्श अरु पौर्णमासकी प्रेरणासेही अवहनन (तण्डुल) (धान्य) के कूटने विषे नियम से प्रवृत्तिका सिद्धिके हुये, तहां भिन्न प्रेरणका अंगीकार नहीं किया है, अरु तिस प्रेरणके अभाव से प्रेरणाके योग्यताकी अपेक्षानहीं । अरु ब्रह्मवेत्ताको योग्यताकी अपेक्षाके अभावहुये भी नियम विधि का असंभव नहीं है । अरु अग्निहोत्रादिकोंविषे प्रवृत्तिको तो अन्य से सिद्ध होनेकरके तिसकी विधिसेही तहां प्रवृत्ति के कहने की योग्यतासे तिसकी सिद्धिके अर्थ प्रेरणाके कहेहुये तिस प्रेरणाको तहां अपने विषयकी अपेक्षाहै । इसप्रकार विषयताको कहते हैं] तैसे अग्निहोत्रादिकोंको अर्थ से प्राप्तहुये प्रवृत्तिके नियमितपनेका असंभव नहीं है ॥'अर्थात् अग्निहोत्रादिकोंको स्वर्गादिकोंकीप्राप्ति के अर्थ होनेसे उनविषयक प्रवृत्तिके नियम होनेका असंभवनहीं।'। अरु जो [नियम विधिविषे प्रेरणाके विषयकी अपेक्षा के अभाव हुये भी तिस विधिको क्लेशरूप होनेसे प्रयोजनकी अपेक्षा कहने को योग्यहै, तिस प्रयोजनके अभावसे नियम सिद्ध होतानहीं । इसप्रकार वादी शंका करे है] अर्थसे प्राप्त प्रवृत्तिका नियम भी प्रयोजनके अभावहुये अघटितही होवेगा, सो बनेनहीं, [तिसके नियमकोभी पूर्ववासना के वशसेही प्राप्तहोने से तहांभी नियम विधिका अवकाशनहीं, तिसकरके विद्वानको प्रयोजनकी अपेक्षा होवेगी, इसप्रकार सिद्धान्ती परिहारकरे है । यहां यह अर्थहै कि, यद्यपिनियमित वा अनियमित भिक्षाटनादिकसे जीवनसिद्धहोताहै, तथापि विद्याकी उत्पत्तिसे पूर्वविद्याकी सिद्ध्यर्थ नियमको अनुष्ठान क्रियाहोनेसे, तिसकी वासनाकी प्रबलतासे विद्याकी उत्पत्तिके अन्तरभी विद्वान् नियमविषेही प्रवृत्तहोवे है अनियम विषे नहीं क्योंकि तिस अनियमकी वासना नियमकी वासनाक-

रके अत्यन्त पराभवको प्राप्तहोती है ताते, पुनः उसको जगावने को यत्नकरके साध्यहोनेसे । अतएव तहां 'अनियमविषे विद्वान् प्रवृत्तहोतानहीं, ताते विद्वान्का नियमभी अर्थसे सिद्धहै] क्योंकि तिसका नियम पूर्वकी प्रवृत्तिकरके सिद्धहै ताते, तिसके उल्लंघन में प्रयत्नकी गौरवता काहिये अधिकताहै ताते। अरु [इस कथन करके नियमके अनुष्ठानको पापकी निवृत्तिरूप अर्थवान्पनाभी निषेधकिया, क्योंकि तिस विद्वान्को पापकी अप्राप्ति है ताते । इसप्रकार उक्तरीतिकरके संन्यासको विधिविना स्वभावके प्राप्त हुये तिसकी कर्त्तव्यताकी विधिकोभी जानके विद्वान् "तीनोंएषणाका त्यागकरके भिक्षाटनको करतेहैं" इत्यादिक वाक्योंकोअनुमोदन करतेहैं । इसप्रकार कहाहै] अर्थसे प्राप्त संन्यासके पुनः कथनसे विद्वान्को तिसकी कर्त्तव्यताका संभवहै । [अरु विधिको प्रयोजनके अभावविषे प्रवर्त्तकहोनेसे तैसेनकहाचहिये, क्योंकि प्रेषमन्त्रके उच्चारण अरु सर्वभूतों को अभयदानादिक मुख्यविधिकी प्राप्तिरूप अर्थवाला होनेकरके विधिको अर्थवान्पनाहै ताते । अरु तिस नियमकीभी व्यर्थता शंकाकरनेयोग्य नहीं है, क्योंकि परमहंस विद्वान्विषे लोकसंग्रहरूप अर्थके होनेसे, अरु तिस लोकसंग्रहको तो पूर्वाभ्यासकरके मैत्रि करुणादिक वासनासे प्राप्तहोनेकरके ब्रह्मविद्याके उपदेशादिकोंकी नाईं प्रयोजनकी अपेक्षासे रहितहोनेसे, यद्वा प्रारब्ध कर्मसे प्राप्तहुये देहेन्द्रियानिकोंके प्रतिभाससे अविचारित " यावज्जीवमग्निहोत्रंजुहोति " यावत्जीवे तावत् अग्निहोत्रकोकरे, । इत्यादि श्रुतिजन्यकर्म की कर्त्तव्यताकी भ्रान्तिकेहुये सोकर्म निवृत्तहोवे है वानहीं,ताते विद्वान्को संन्यासके विधिकीअर्थवानताका संभवहै । ऐसे विद्वान् को संन्यासके साधनेकरके विद्याकी अकर्मी ।' संन्यासी '। विषे स्थिति सिद्धकिया। अरु तिसहीहेतुसे तिसविद्याका कर्मसे असम्बन्धभी अर्थसे सिद्धकिया। अब जिज्ञासुकेभी संन्यासको साधतेहुये विद्याका कर्मीविषे स्थितपना अरु कर्मसे सम्बन्धीपना

दूरसेनिषेधकिया, इसप्रकार कहतेहैं] अरुअविद्वान् मुमुक्षुकोभी संन्यास कर्त्तव्यहीहै। तैसे [तहां श्रुतिको कहते हैं, यहां यह भावहै कि "उपरत तितिक्षु समाहितोभूत्वा" उपराम तितिक्षु, समाहितचित्तहोयके " आत्मन्येवात्मानंपश्यति " आत्मा (बुद्धि) बिषेही आत्माको देखै, । यह श्रुतिका शेष है, तहां उपरातिशब्दकरके संन्यास कहा है] " शांतो दान्तः " इत्यादि श्रुतिका वचन हैं, अरु आत्मज्ञानके साधन शम दमादिकनके अन्य आश्रम बिषे असंभवहोने से। अरु " अत्याश्रमिभ्यःपरमं पवित्रं प्रोवाचसम्यगृषिसंघजुष्टमिति " अति आश्रमी के अर्थ ऋषियों के समूहकरके सेवनकिये परमपवित्रको कहताहुआ,। इसप्रकार श्वेताश्वतर उपनिषद् बिषे कहाहुआ जानते हैं। अरु "न कर्म्मणा न प्रजया धनेन त्यागेनैके अमृतत्वमानशुरिति" न कर्मसे न प्रजासे न धनसे,अमृतहोताहै, कईएक महात्मा (उक्त तीनोंके) त्याग (संन्यास) से अमरणभावको पावतेहुये,। इसप्रकार कैवल्य उपनिषद बिषे कहाहै। अरु " ज्ञात्वानैष्कर्म्य माचरेत् " जानके संन्यासको करै,। अरु" ब्रह्माश्रमपदेवसेत्" ब्रह्मके आश्रमरूप स्थानबिषे निवासकरना, इत्यादिक स्मृति प्रमाणसे। अरु विद्या के ब्रह्मचर्य्यादिक साधनों की सम्पूर्णता करके अत्याश्रमि (परमहंस) योंबिषे सम्भवसे अरु गृहस्थाश्रम बिषे तिनके असम्भवसे, ज्ञानोत्पत्तिके पीछे वा ज्ञानार्थ संन्यास की विधि है ॥ (अर्थात् गृहस्थाश्रम में ज्ञानहुये पश्चात् का जो संन्यास है सो विद्वत् संन्यास है, अरु ज्ञानकी प्राप्तिके अर्थ जो संन्यास है सो विविदिशा संन्यास है, अरु गृहस्थाश्रम में ज्ञान होने पश्चात् भी संन्यासकरनेका कथनहै सो संन्यासकी स्तुति वा महिमा देखने के अर्थ, वा आग्रहवश है, क्योंकि आत्मा के परोक्षग्यानसेही देहादिक अनात्माओं से अपनेको पृथक् उनका साक्षीमात्रहौं ऐसा मानता है अरु देहादिकों से अपने को पृथक् जाननेसे देहादिक अनात्माश्रित अविद्यारचित वर्णाश्रम अरु

तिनकेधर्ममें प्रवृत्तहोना सम्भवेनहीं, अरु जब अपनेआप आत्मा का साक्षात् अपरोक्ष सम्यक् ज्ञानहुये पश्चात् देहादि अनात्माश्रित वर्णाश्रम अरु तिनके धर्ममें अहंकारपूर्वक प्रवृत्तिहोना अत्यन्त असंभवहै, अरु उस यथार्थ साक्षात् आत्मानुभवि पुरुषका जो निर्यल किसीभी आश्रममें स्थितिहै सो लोकदृष्टिमात्र उसकी आश्रम में स्थितिभासे है नतु वो अपनी दृष्टिमें तो अपने स्वरूपाश्रममेंही सुशोभित है, अरु जिन देहादि अनात्माश्रित वर्णाश्रम अरु तिनके धर्मकर्म से, परोक्षज्ञानावस्थाही में पृथक् हुआ अपनेविषे तिनका अभाव देखताहै, तब साक्षात् अपरोक्ष ज्ञानहुये पश्चात् उस विद्वान् का अनात्माश्रित वर्णाश्रम अरु तिनके धर्म में प्रवृत्तहोना किसीप्रकार भी बनेनहीं, अरु जबतक देहादि अनात्मामें आत्मभाव अहंबुद्धि होवेनहीं तावत् तदाश्रित वर्णाश्रमधर्म में वृत्तिबनेनहीं अरु साक्षात् आत्मदर्शी विद्वान् को अनात्म देहादिकोंमें आत्मभाव का सकारण अभावहै, ताते साक्षात् सम्यक् आत्मज्ञानहोनेके पश्चात् उस विद्वान्की अनात्माश्रितधर्म में प्रवृत्ति कदापि बनेनहीं । अरु सम्यक् ज्ञानोत्तरकालमें उसविद्वान्को यहभावनहीं, कि मैं गृहस्थहौं अब मुझको सम्यक्ज्ञानहुआहै ताते मैं ज्ञानी हौं अब मुझ ज्ञानीको संन्यास लेना योग्य है । अरु उस विद्वान्को उसगृह अरु पुत्रादिकों में ममत्व बुद्धिनहीं कि यहमेरे हैं, क्योंकि देहादि अनात्माओंमें अहमत्व अरु तत्संबन्धियोंमें ममत्व भावका जो होनाहै सो अविद्या करके होताहै सो अविद्या उस विद्वान्की अशेष अभावहुई है ताते उस आत्मदर्शी विद्वान्को आत्म साक्षात्कारहोनेसे अविद्याके अभावहुये देहादि अनात्म अरु तत्सम्बन्धी पुत्रादि अरु आश्रमादिक अरु तदाश्रित कर्तृत्वादिकों विषे अहंमम भावनहीं, उसको अहंमम रागद्वेषादि सर्वके अभावहोने से सर्वत्र उदासीनता लक्षणवान् समभावहुआहै, अरु उसको केवल शरीर यात्रामात्र भिक्षान्नकाग्रहण भोजन है सो सर्वत्र, स्वपरग्राह्य अग्राह्य

विधिनिषेधादिकों की दृष्टि के अभावपूर्वक केवल शरीरधारण-मात्रही हैं सो जो कदापि उस विद्वान्‌की शरीर यात्रा लोकदृष्टि से स्वगृहमेंही है तोभी उस विद्वान्‌की दृष्टि में सकारण स्वपर भावके अभावसे वहांकीभी शरीरयात्रा उसको किल्विषकाकारण होतीनहीं "शुद्धमपापविद्धम्" "असंगोह्ययंपुरुषः" "न लिंप्यते कर्मणापापकेनेति" अरु आत्माध्यासी सर्वकाल समाधिवान् पुरुषको शरीरयात्रा भी उसरीतिसे करनीचाहिये कि जिस से निदिध्यासन समाधि में विक्षेप न होय, अरु शरीरयात्राविषे जो समाधि से उत्थान है सोई विक्षेप है तिस विक्षेपकी जिस प्रकार अतिशीघ्र निवृत्तिहोय सो कर्त्तव्य है, तहां जो विद्वान्‌का भिक्षाकेअर्थ सातगृहजाने का नियम विधि शास्त्र ने कहाहै सो अस्तु, परन्तु सातगृहमें भ्रमणकरने में समयकाव्यय अरु तदाश्रित विक्षेप अधिकहै, तिसही अपेक्षा अहंमम भावसे रहितहोय विद्वान्‌का जो स्वगृहमेंहीं क्षुधारूप रोगकी निवृत्ति पूर्वक शरीर धारणार्थ निर्यत्न सुखेन भिक्षान्नका ग्रहणहै सो अति अल्पकाल विक्षेपहै, अतएव अभिप्राय यहहै कि अपरोक्ष आत्मदर्शी विद्वान्‌को शरीरयात्रामात्रकीभी प्रवृत्तिस्वपरभावसे रहित इसप्रकार करनी चाहिये कि जिसमें आत्मअभ्यास समाधिमें अतिअल्प विक्षेपहोय क्योंकि संन्यासादिकोंका करनाएकान्तवनादिकोंमेंरहना, इत्यादि सर्व विक्षेपकी निवृत्तिके अर्थहै, ताते वर्ण आश्रम गृह वन इत्यादि सर्वके आग्रहको त्यागके जिस वर्ण आश्रम स्थानादिकोंमें समाधि विचार आभासमें विक्षेप न होय तहांहीरहे ॥ अरु जिस वर्ण आश्रम स्थानदेश आदिकों में रहनेसे आत्म साक्षात्कार होय सोई सर्वोत्तमहै, उससे अधिक उत्तम न कोई वर्ण है न आश्रम है न जाति है न स्थानहै न देशहै, क्योंकि जिस वर्णाश्रमजाति स्थान देशविषे यह अति अल्पज्ञ पापी पुण्यीकर्त्ता भोक्ता स्वर्गी नरकी सुखी दुःखी, इत्यादि धर्म लक्षणवान् त्वं पदका वाच्य जीव सो "ब्रह्मविद्ब्रह्मैव भवति" "आत्मविदाप्नोति परम्" इ-

त्यादि प्रमाणसे ब्रह्मआत्माके सम्यक् अभेदज्ञानहोने से ब्रह्मभाव
को प्राप्तहुआ है, तिस ब्रह्मभूत विद्वान्को उससे अधिक उत्तम
अरु पवित्र कौन है किन्तु कोई भी नहीं। ताते जिस वर्णाश्रम
स्थान जातिमें इसपुरुषको आत्मा साक्षात्होवे तिसही में सर्व
वर्णाश्रमजाति स्थानादिक अनात्मा अरु तदाश्रित धर्मकर्म सर्व
से अहंमम भावको त्याग तहांही शरीरयात्रा करतसंते निर्वाण
होवे। अरु जो कदापि गृहस्थाश्रम जो विक्षेपालयहै तिसमें वि-
क्षेपकी बाहुल्यतासे श्रवण मननादि साधनपूर्वक आत्म साक्षा-
त्कार न होय तो शीघ्रही उस आश्रमसे उठ (उसको त्याग)
संन्यासले सर्वकर्मरूप विक्षेपसे रहित होय संग्रहके त्यागपूर्वक
भिक्षान्नमात्रसे क्षुधारूप रोगकी निवृत्तिसे शरीर धारण करता
अपने आप आत्माका श्रवण मनननिदिध्यासकर महावाक्य के
अर्थज्ञानसे आत्म साक्षात्कारसे ब्रह्म आत्माके अभेद अनुभवनि-
श्चयसे ब्रह्मभूत विद्वान् शरीरको प्रारब्धभोगाय शरीरप्रारब्धके
क्षयहुये आप अपने निर्विशेष निरुपाधिस्वरूपमें निर्वाणस्थितिको
प्राप्तहोवे ॥ हे सौम्य! इससर्व कहनेका अभिप्राय यहहै कि जिस
वर्णाश्रम स्थानमें विक्षेप थोड़ादेखे तहांही स्थितहोय श्रवण म-
ननादि साधनपूर्वक आत्मा साक्षात्कार रूप परमश्रेयार्थ पुरुषार्थ
करे क्योंकि तहांकाकिया पुरुषार्थ सुखेन आत्मसाक्षात्कारका प्रा-
यकहोताहै आगे "।यथेच्छसितथाकुरु"। जो इच्छाहोय तैसाकरो;॥
[ननु गृहस्थकोभी। "। ब्रह्मचर्यमेवयद्रात्रौ रत्यासंयुज्यंते"। इत्यादि
प्रमाणसे,! ऋतुकाल '। आदिक नियमित'।कालमात्रबिषे '।भार्या'।
गमनरूप ब्रह्मचर्य अरु कदाचित् ध्यानकाल बिषे एककीपना
।'वा चित्तकी एकाग्रतापना'। संभवेहै, यह आशङ्काकरके तिसको
अपूर्ण अरु तिससे ज्ञानकी असिद्धि, होनेसे, अरु ध्यानकालबिषे
पत्नी के सम्बन्धकी अप्राप्ति होने से तिसकी विधिकी व्यर्थता है
ताते, यहकथन बनेनहीं,ऐसा कहते हैं,यहां यह अर्थ है कि, इस
करके आत्मज्ञानको कर्म बिषे स्थितपना अरु कर्मसम्बन्धीपना

नहींहै] अरु इसप्रकार सम्पूर्ण न हुआ जो साधन सो किसीभी अर्थ के साधने निमित्त परिपूर्ण (समर्थ) होतानहीं। अरु जो ["यत्तु कर्म बृहतीसहस्रलक्षणं प्रस्तुत्यात्मज्ञानं प्रारभ्यत" बृहतीसहस्ररूप कर्मको प्रसंगबिषे प्राप्तकरके आत्मज्ञानका आरंभ करियेहै, इत्यादिक वाक्यों से आत्मज्ञानको कर्मकासम्बन्धीपना कहाहै, । तहां कहतेहैं, यहां यह अर्थहै कि, तैसे पूर्वोक्त कर्मका सम्बन्धी जो ज्ञान सो संसाररूप फलवाला अन्यहीं है, अरु सो पूर्वही मुमुक्षुने समाप्तकिया है, ताते सो परमात्मज्ञान नहीं] विज्ञान बिषे उपयोगी गृहस्थाश्रम के कर्म हैं तिनका देवता (वा देवभावकी) प्राप्तिरूप संसारको विषय करनेवालाही परमफल समाप्तकियाहै। [ननु, पूर्वोक्तही जो परमात्माका ज्ञानहै, सो कर्मका सम्बन्धीही है, यह आशंका करके, तिसकर्म सम्बन्धी ज्ञानको क्रियाकारक रूप फलवाला होनेकरके तिसकी समाप्तिसे, अरु परमात्म ज्ञानको मोक्षरूप फलवाला होने करके सो (कर्म सम्बन्धी ज्ञान) परमात्मज्ञान नहीं है, ऐसा कहतेहैं] अरु जो कर्मीकोही परमात्माका ज्ञानहोवे, तो संसारकोही विषयकरने वालेफलकी समाप्ति न होवेगी (अर्थात् कर्मसम्बन्धी ज्ञानकाजो देवतादि भावकी प्राप्तिरूप फलहै सो नामरूपक्रियात्मक होने से अपनेको संसारान्तरही लखावेहै, ताते उसको संसारको विषय करने वाला फल कहते हैं तिसकी समाप्ति कर्म सम्बन्धी ज्ञानसे होवे नहीं (अरुजोकहे कि सोसंसार परमात्मज्ञानके साधनरूप पृथिवी अरु अग्निआदि देवताकी उपासनारूप ज्ञानका फलहै, अंगीरूप परमात्मज्ञान का फलनहीं, एतदर्थ तिस परमात्मज्ञान को मुक्तिरूप फलवान् पनेका विरोध नहींहै, सो बनेनहीं क्योंकि परमात्मज्ञानको तिस संसाररूप फलके विरोधी आत्मवस्तुको विषय करनेवाला ज्ञान अमृत भावका साधन है। अरु जिसकरके गुणरूप फलके सम्बन्ध हुये ज्ञानको सर्व विशेष रहित आत्मवस्तुको विषय करनेपना प्राप्त होतानहीं, सो अनिष्टहै, क्योंकि

वाजसनेयी ब्राह्मण विषे "यत्र त्वस्य सर्वमात्मैवाभूत्" जहां तो इसको सर्व आत्माही होताहुआ, । इसप्रकार अधिकार करके विद्वान् को क्रिया कारक फलादिक सर्व व्यवहारके निषेध से । अरु तिसके विपरीत अविद्वान् को "यत्राहिद्वैतमिवभवति तदितर इतरम्पश्यति" जहां द्वैतवत् होताहै तहांअन्य अन्यको । अन्यको अन्य । देखताहै,। इसप्रकार कहके क्रिया कारक फलरूप संसार कोही देखाया होने से । तैसे यहांभी हिरण्यगर्भादि देवतारूप भावकी प्राप्तिरूप संसारको विषय करनेवाला जो क्षुधादि धर्मवान् वस्तुरूप फलहै, तिस फलको समाप्त करके केवल सर्वात्म वस्तुको विषय करनेवाले ज्ञानको अमृतभावके अर्थ कहताहों, इसप्रकार प्रवृत्त होते हैं । अरु ऋणरूप जो प्रतिबन्ध है सो अविद्वान्के अर्थही है, क्योंकि "सोऽयंमनुष्यलोकः पुत्रेणैवजैयो" सो यह मनुष्यलोक पुत्रकरकेही जय (प्राप्त, सम्पादन) करने योग्यहै,। इत्यादिरूप तीनलोककी । प्राप्तिके । साधनके नियमकी श्रुतिसे । [ऐसे ज्ञानको कर्मका सम्बन्धीपना कहते हैं "यावज्जीवमग्निहोत्रं जुहोति" यावत् जीवे तावत् अग्निहोत्रको करे, इत्यादि श्रुतिके । विधिवाक्य । प्रमाण करके कर्मका त्याग संभवे नहीं, इसप्रकार जो पूर्ववादी ने कहाथा, तहां इस उक्त श्रुतिका अविद्वान् को विषय करने पना कहा । अर्थात् उक्त कर्म विषे प्रेरक जे श्रुतिवाक्य हैं सो अनात्माभिमानी अविद्वान् के अर्थ है । । अब ऋणत्रयी की श्रुतिकी गतिको कहे हैं । यहां यह अर्थ है कि, नहीं दूरकिये ऋणको मनुष्यादि लोकोंकी प्राप्तिके प्रति प्रतिबन्धक होनेसे उनलोकों के अर्थी अविद्वान्कोही ऋणका दूरकरना कर्त्तव्यहै।अर्थात् जोसकामी मनुष्यादि लोककीप्राप्तिकी कामना वालेपुरुषहैं सो जो कदापि ऋणमोचक कर्मोंकोकरके अपने ऋण से छूटते नहीं तिनको वो अपने ऋणही अभीष्टलोक की प्राप्ति में प्रतिबंधक (विघ्न करनेवाले) होतेहैं, ताते ऋणत्रय के दूर करनेकी आज्ञाकरनेवाली श्रुतिकी सकामी लोकार्थी अविद्वानों

प्रति ऋण दूरकरने की आज्ञाहै, अरु जिस अकामी पुरुषकी लोकादि सर्व एषणाअशेष निर्मूल हुई हैं तिस विद्वान् । मुमुक्षुके अर्थ नहीं, क्योंकि उन ऋणों को मोक्षके प्रति अप्रतिबन्धकता है ताते] '। अर्थात उक्त ऋण मोक्षार्थीको मोक्षकी प्राप्तिमें प्रतिबन्धक नहीं, क्योंकि जो अपने आपस्वस्वरूप का सम्यक् ज्ञान है सोई मोक्ष है अरु अपनेआप नित्य प्राप्तरूप आत्माकी विस्मृतिरूप अप्राप्ति है 'कंठगत मणिकी विस्मृतिवत्'अरु तिसका यथार्थ साक्षात्कार है सोई उसकी प्राप्तिहै 'कंठगत मणि की सम्यक् स्मृतिवत्, ताते अपनेआप आत्माकी जो सम्यक् ज्ञानसे यथार्थ साक्षात्कार रूपा प्राप्ति है सोई उसकी प्राप्ति है, कुछ अपने से भिन्न देशकालके परिच्छेदवाली वस्तुकी प्राप्तिवत् अप्राप्तकी प्राप्ति नहीं क्योंकि अपनेआप आत्मा होने से नित्य प्राप्त है, ताते जो अन्य सर्व लोकादि कामना के अशेष अभावसे आत्म साक्षात्कार की कामना है सो अन्य कामनावत् कामना नहीं क्योंकि लोकादि अन्य कामनाका विषय अविद्यात्मक संसार है ताते सो कामना बन्धका हेतुहै, अरु तिससे विपरीत सकारण संसारके विरोधी आत्मा विषयक कामनाहै तिसका विषय आत्म साक्षात्काररूपहै तातेसो कामना मोक्षकाहेतुहै ताते। अरु आत्मा की जो प्राप्तिहै सो देशकालसे परिच्छेदको पाइ आत्मासे अन्यअनात्मरूप अप्राप्तकर्म साध्य वस्तुकी प्राप्तिवत्, प्राप्ति नहीं क्योंकि सर्वका अपने आपआत्माहोनेसे नित्य प्राप्तहीहै। अतएव अविद्वान् सकामी पुरुषके अभीष्ट लोकादिकों की प्राप्ति में ऋणत्रय का न दूरकरना प्रतिबंधकहै ताते उनको अपने इष्ट लोकादिकोंकीप्राप्ति में प्रतिबंधक जे ऋणत्रय तिसके दूरकरने के अर्थ श्रुति उक्त उपाय करना योग्यहै, अरु उन अविद्वानों के अर्थही ऋण दूरकरने की वेदकी विधिरूप प्रेरणाहै आत्मकामी मुमुक्षुके अर्थ नहीं,॥ अरु "किंप्रजया करिष्याम" प्रजासे हम क्या करेंगे; । इत्यादिरूप श्रुति वाक्य करके आत्मारूप लोकके अर्थी विद्वान् के अर्थ ऋणरूप

प्रतिबंधका अभाव देखायाहै " तथैतद्धस्मवै तद्विद्वांस आहुर्ऋषयः कावषेया इत्यादि " " एतद्ब्रह्मैवैतत् पूर्वे विद्वांसोऽग्निहोत्रं न जुहवाञ्चक्रुरिति, कौषीतकीनाम " इसप्रसिद्ध तिसवस्तुको विद्वान् जो कावषेय नामवाला ऋषिहै सो, किस प्रयोजनार्थ हम अध्ययनकोकरें, इत्यादि। अरु। यह ब्रह्महीहै इसकेजाननेवाले पूर्व केविद्वान् अग्निहोत्रकोनहीं होमतेहुये,यहकौषितकी उपनिषद्का वाक्य है, सो विद्वान् के ऋणरूप प्रतिबंधके अभावमें प्रमाणहै। अरु जो कहे कि, जब ऐसेहीहै तब अविद्वान्कोऋणके न अभाव किये संन्यासका असंभव होवेगा, सो बनेनहीं [गृहस्थकोही ऋण की प्रतिबन्धकताहै, क्योंकि तिस (गृहस्थ) हीको तिस (ऋण) के निराकरणकरनेके अधिकार होने से, ताते गृहस्थाश्रमकी प्राप्ति से पूर्व ब्रह्मचर्य्याश्रम विषेही मुमुक्षुहुये पुरुषको संन्यास संभवे है, इसप्रकार सिद्धान्ती (वादी के विकल्पका) परिहार करे है। यद्यपि यज्ञोपवीत (संस्कारसे) धारणके अनन्तरही ऋणके निवारण बिषे उसको अधिकार संभवे है, एतदर्थ " गृहस्थाश्रमसे पूर्व" इसप्रकार कहाहै, तथापि विविदिशा संन्यासबिषे अधीतवेद कोही अधिकारहै, ताते अधीतवेदको " गृहस्थाश्रमकी प्राप्ति से पूर्व, यह कहा ऐसे जानना] क्योंकि गृहस्थाश्रमकी प्राप्तिसे पूर्व ब्रह्मचर्य्याश्रमबिषेही मुमुक्षुको ऋणी होने के असंभवसे संन्यास संभवे है। [ननु जन्मको पाया हुआ ब्राह्मण तीनसे ऋणवान् होताहै। ब्रह्मचर्य्य से ऋषिनके अर्थ, यज्ञ से देवनके अर्थ, प्रजासे पितरोंके अर्थ,इस वाक्यकरके उत्पन्नहुये मात्रको ऋणवान्पना प्रतीत होताहै, यह आशंकाकरके ऋणवान्पने की उक्तिका साक्षात् कुछभी प्रयोजन नहीं है,किन्तु ब्रह्मचर्य्यादिकोंकी कर्त्तव्यता का प्रकट करना प्रयोजनहै। अरु अधिकारके अर्थ अनारूढहुआ पुरुष, सो (ऋणका निवारण, करनेको समर्थ होवेनहीं, क्योंकि अन्यको प्राप्तहुये मात्रको तिसका सामर्थ्यनहीं ताते। किंवा उक्त वाक्यबिषे ब्राह्मणके ग्रहणसे क्षत्रियादिकोंको ऋणके अभावका

प्रसंग प्राप्तहोताहै। ब्राह्मणपदको द्विजाति (त्रिवर्ण) की उपलक्षणताकेहुये अधिकारपने की उपलक्षणताही योग्य है। याते 'जायमान' उत्पन्नहुआ,। यह जो पदहै सो अधिकारको लखावता है। इसप्रकार उत्पन्न हुआ अधिकारी सम्पादित होता है। [अर्थात् ब्राह्मण जो है सो ऋण त्रयके देनेका मुख्य अधिकारी है, अरु अधिकारीसे अपनाऋण पायके 'ऋषि' पितृ, देवता, यह तीनों सन्तुष्ट होते हैं 'जैसे लोकविषे अपने ऋणी से ऋणको पाय सन्तुष्ट होते हैं तैसे,। परन्तु यद्यपि यज्ञोपवीत संस्कार होने से वो ब्राह्मण ब्राह्मणभावको पाय ऋणदेने के अधिकारी ब्रह्मचर्य गृहस्थ इन आश्रममें स्थितहोय ऋण निवारण करताहै, तथापि उस ऋणदाता अधिकारी की उत्पत्तिमात्रसे ही अपने ऋण के प्राप्तहोनेकी सत्य आशापूर्वक जो ऋषि पितृ देवता इनके तुष्टहर्ष को "जायमान" उत्पन्नहुआ,। यह पद वा शब्द प्रकट करेहै,॥ यह तिस वाक्यका अर्थ है। एतदर्थ तिस अधिकारसे पूर्व ऋण का सम्बन्धहैनहीं] अरु जब अधिकारविषे अनारूढ़ हुआभी पुरुष ऋणीहोवे, तब सर्वको ही ऋणीपना होनाचाहिये, यह अनिष्ट प्राप्तहोवेगा। [यहां अनिष्ट शब्दका अर्थ यहहै कि ब्रह्मचारी को भी ऋणीभावके हुये ब्रह्मचर्य विषेही मृतकहुये नैष्ठिक ब्रह्मचारी को परलोक की प्राप्तिका प्रतिबन्धक होवेगा, यह अनिष्ट है क्योंकि "अष्टाशीतिसहस्र" अठासीहजार,। यहांसे आरम्भ करके "तदेवगुरुवासिनामित्यादि" सोई गुरु कुलवासीको होता है,। इत्यादि वाक्यसे पुराणोंविषे लोक प्राप्तिका कथनहै ताते] गृहस्थाश्रमको [केवल गृहस्थाश्रमसे पूर्वही संन्यासकी सिद्धिहै ऐसा नहीं, किन्तु विधिके बलसे गृहस्थको भी सो है, ऐसा कहते हैं, यहां यह भावहै कि ऋणकी श्रुतिसे संन्यासकी विधिका विरोधनहीं, क्योंकि तिस श्रुतिको शुभकर्म के अर्थवाद (स्तुति) परत्वमात्र होनेकरके स्वार्थविषे तात्पर्यका अभावहै ताते। अन्यथा सो शुभकर्मोंसेही शुद्ध करियेहै, ताते तिसकेवादोंकोशुभकर्मरूपता

है, ऐसे शुभकर्ममात्रके निषेधके कथनसे ब्रह्मचर्यादिकों के भी अनुष्ठानके अभावका प्रसंग होताहै ताते] प्राप्तहुये पुरुषको भी "गृहाद्वनीभूत्वा प्रव्रजेत् यदि वेतरथा ब्रह्मचर्य्यादेव प्रव्रजेद्गृहाद्वा वनाद्वेति" गृहसे वानप्रस्थ होयके गमनकरे, वा जब अन्य प्रकार (तीव्र वैराग्य) होय तब ब्रह्मचर्यसेही गमनकरे, गृहसे वा वनसे गमनकरे । [अर्थात् ब्रह्मचर्यादि आश्रमोंमें से जिस किसी आश्रममें तीव्र वैराग्यपूर्वक मुमुक्षुता उदयहोवे तिसही आश्रम से संन्यासपूर्वक आत्म अभ्यास समाधिके अर्थ श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ आचार्य समीप वा विविक्त (एकान्त) देश वनको गमनकरे,मुमुक्षुता उदय होने के पश्चात् क्रमसाध्य आश्रमान्तर करके पश्चात् गमन न करे क्योंकि मुमुक्षुता उदयहोने के पश्चात् जो क्रमशः आश्रमान्तर है सो उस मुमुक्षुको ब्रह्मआत्मा की अभेद एकतारूप से आत्माके श्रवण मनन निदिध्यासनादिकों में विघ्न विक्षेपकारी प्रतिबन्धकहै ताते। अरु जो वैराग्यपूर्वक मुमुक्षुता न प्रकटहोय तो मुख्यकरके ब्राह्मणको ब्रह्मचर्य से प्रारभ्य संन्यासपर्यन्त क्रमसाध्य आश्रमोंको प्राप्तहोय चतुर्थाश्रममें श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ आचार्यसे तत्त्वमस्यादि महावाक्यार्थसे आत्माको श्रवण कर पुनः भृगुवत् एकान्तमेंजाय विचारयुक्ति शास्त्र इनकरके संशय समाधानपूर्वक आत्माका मननकरे पश्चात् उस श्रवणमननकिये आत्मामें निर्विकल्पादि आत्म लक्षणको धारणकर निर्विकल्प समाधिरूप निदिध्यासनकरे, इसप्रकार निदिध्यासनकी दृढ़ता से आत्मसाक्षात्कार स्थितिपाय आश्रमातीतहोय यावत् शरीर प्रारब्ध अवशेषरहे तावत् आप अपने साक्षिरूपसे द्रष्टाहुआ शरीरको प्रारब्ध भोगाय तिनदोनोंको पर्य्यवसान (समाप्ति) को प्रायहुये आप अपने स्वरूपमें जैसा दृश्यदर्शन द्रष्टाआदि त्रिपुटीरूपादि सर्वउपाधि विशेष विशेषण विशेष्य आदि भावसे रहित जैसा निर्विशेष अस्तिमात्र सत्तासामान्य अचैत्यचिन्मात्रहै सोई हैं। ॥ इसप्रकार आत्मज्ञानप्राप्तिके उपाय श्रवणादि साधनों

का साधक वा साधन होने से । सर्व इषणाका अभावरूप लक्षणवाला । संन्यास अंगीकार करते हैं । अरु " यावज्जीवमग्निहोत्रंजुहोति " यावत् जीवे तावत् अग्निहोत्रको करे,।इत्यादि श्रुतियों की अविद्वान् अरु अमुमुक्षु । अरु सकाम । पुरुष बिषे कृतार्थता है। अरु छांदोग्यउपनिषद् बिषे केतनीक शाखावालोंको द्वादशरात्र अग्निहोत्रको हवनकरके तिसके पश्चात् तिसका परित्याग करना सुनते हैं। [ननु, संन्यासकी श्रुति भी अनधिकारी बिषे संकोचको प्राप्तहुई है, इसप्रकार वादी कहता है] अरु जो कहे अनधिकारी के अर्थ संन्यास कहा है, सो कथन बनेनहीं, क्योंकि तिनकी विधिके " पृथगेवोत्सन्नाग्निर्निराग्निको,। इत्यादिं " नष्टअग्निवाला वा अग्निके ग्रहणसे रहित (निरग्निः), इत्यादि श्रुतिबिषे, अरु सब स्मृतियोंबिषे भिन्न श्रवणसे, तिनको अविशेषकरके आश्रमका भेद अरु समुच्चय प्रसिद्ध है। अरु [इस प्रकार विविदिषा संन्यासको साधके अवपूर्व सिद्धकिये विद्वत्संन्यासबिषे जो शंकाहै तिसका अनुवाद करते हैं। यहां यह निकर्ष है। कि पूर्व विद्वान्की गृह बिषेही स्थितिहो, इस शंकाका निषेध किया, अरु यहां तो गृह बिषे वा वनबिषे स्थितिहोउ,इस प्रकारकी अनियमित शंकाका निषेधकरनेको सो शंका अधिक यथेष्टाचरणके निवारणार्थ पुनः अनुवाद करते हैं] जो कहै विद्वान्को अर्थसे प्राप्त संन्यास है, एतदर्थ शास्त्रके अर्थके अभावके हुये गृहबिषे वा वनबिषे स्थितहोनेवाले विद्वान् को विशेष नहीं है।[यद्यपि अर्थसे प्राप्त संन्यासकेभी पुनः कथनसे यहां विद्वान् के संन्यासको भी शास्त्रार्थ करके युक्तपना कहाही है तथापि तिस के उक्त अशास्त्रार्थ करके युक्तपने को अंगीकार करके भी कहते हैं] सो कथन असत्यहै, क्योंकि संन्यासकोही अर्थसे प्राप्तहोने करके विद्वान् की अन्य ठिकाने (गृहस्थाश्रम बिषे) स्थिति न होवेगी, अरु अन्य ठिकाने जो स्थिती है तिसको कामना अरु कर्मकी करी हुई कहते हैं, अरु तिन कामादिकोंका अभावमात्रही

संन्यास है, इसप्रकार पूर्व कथनकिया होने से तिस संन्यास को अनुष्ठेयपना नहीं है, एतदर्थ सो संन्यास कामादिकों का कियाभी नहीं है। अरु यथेष्टाचरण तो विद्वान्को अत्यन्त अप्राप्यहै, क्योंकि तिस (यथेष्टाचरण) को अत्यन्त मूढ़का विषय करके जानते हैं ताते (अर्थात् शास्त्र मर्य्यादारहित जो यथेष्टाचरण है सो केवल अत्यन्त मूढ़ पुरुषों बिषेही पाया जाता है) अरु जिस करके आत्मवेत्ता पुरुषको शास्त्रविहित कर्म्माचरण भी अत्यन्त क्लेशकारी देखते हैं (अर्थात् उस आत्मवेत्ता आत्माभ्यासी समाधिवाले पुरुषको अन्तःकरणकी वृत्तिका ' बाह्य व्यवहारके सम्मुख होना अतिही अनिष्ट है क्योंकि स्वरूपाकार वृत्तिका जो बाह्य विषय विषय है जिनका ऐसा जो क्रियात्मक व्यवहार तदाकारके परिणाम होना सोई संसारका कारण होनेसे उस विद्वान् को वो पातकरूप अरु बन्धनरूप प्रतिबन्ध का कारण है "पराचः कामाननुयन्ति बालास्ते मृत्योर्यन्तिवित तस्यपाशम् " अतएव जिस आत्मनिष्ठ विद्वान्को शास्त्र विहितकर्माचरण भी अति अनिष्ट क्लेशरूप हैं, तिस विद्वान्का शास्त्र अविहि यथेष्टाचरणमें प्रवृत्त होना कदापि संभवे नहीं (अरु तिसही करके उसको अप्राप्त है (अर्थात् " (तस्यकार्य्यं न विद्यते " (इत्यादि स्मृति प्रमाण से साक्षात् आत्मनिष्ट पुरुष को क्रियामें प्रवृत्त होनेकी विधि प्रेरणा प्राप्त नहीं, तब अत्यन्त अविवेकरूप निमित्त से होनहारजे यथेष्टाचरण शास्त्र मर्य्यादासे बाह्य इच्छाके अनुसार आचरण (वर्त्तना) अति अनिष्ट हुआ अप्राप्त होय, तिसमें क्या कहना है, किन्तु कुछ भी नहीं । अरु उन्माद अरु तिमिर दृष्टि करके (जैसे रज्जु सर्पाकार से (जिस प्रकार की जानी जो वस्तु, सो तिस उन्माद अरु तिमिर दृष्टि के दूर होने से तैसीही होती भासती नहीं, क्योंकि तिस वस्तुविषे उन्माद अरु तिमिर दृष्टिरूप निमित्त का किया अन्य थापना होताहै स्वरूपसेही नहीं । ताते (सम्यक् (आत्म-

वेत्ताको संन्यास से। इषणात्रय के सम्यक् प्रकार त्यागसे। भिन्न यथेष्टाचरण नहीं।' हे भगवन्! यहां कहा है कि आत्मवेत्ता को संन्यास से भिन्न यथेष्टाचरण नहीं, सो इस कहने के ध्वन्यर्थ से सिद्धहोता है कि उस विद्वान् का संन्यासमात्र यथेष्टाचरण है तिससे भिन्न नहीं, हे प्रियदर्शन! यह तुमको भ्रान्ति से अर्थ का अनर्थ भासता है, विद्वान् का जो संन्यास है सो अनेकश्रुति शास्त्रादिकों करके प्रतिपाद्य है "प्रव्राजिनो लोकमिच्छन्तः प्रव्रजन्ति" "तेहस्म पुत्रेषणायाश्च वित्तेषणायाश्च लोकेषणायाश्च व्युत्थायाथ भिक्षाचर्यञ्चरन्ति" इत्यादि अनेक श्रुतियों के प्रमाण से आत्मवेत्ता विद्वान् का संन्यास स्वप्न में भी यथेष्टाचरण रूप विचारणीय नहीं, वो सर्वथा श्रुति स्मृतियों के प्रमाण विधि वाक्यों से प्रकाशित है, अरु जो किसी कोई अवधूत परमहंसों में यथेष्टाचरण भासता भी है तो सो भी। "इति ते ज्ञानमाख्यातं गुह्याद्गुह्यतरंमया, विमृश्यैतदशेषेण यथेच्छसि तथाकुरु" इत्यादि स्मृतियों के प्रमाणसे शास्त्रोक्तही है, अरु तिसकरके वो ब्रह्मभूत आत्मानुभवी विद्वान् लेप को पावतानहीं, परन्तु सो भी कचित् है। ताते विद्वान् स्वतन्त्र आत्मवेत्ता संन्यासी को संन्यास में भी, कि जिसमें उसके अर्थ विधिनिषेध नहीं, यथेष्टाचरण का अभावहै। ॥ अरु। अपने आप अक्रिय आत्मस्वरूपके यथार्थ साक्षात्कारके हुये। अन्यकर्त्तव्य भी नहीं, यह सिद्धहुआ॥ अरु जो कहा कि विद्या अरु अविद्या को जो।'पुरुष'। साथही अनुष्ठान करनेयोग्य जानताहै, इसवचन करके विद्या अरु अविद्या के समुच्चय के श्रवण से विद्वान्को भी तिस कारण से कामादिक होवेंगे, अरु तिस निमित्तवाली इच्छा के अनुसार चेष्टाहोवेगी, तहां कहते हैं, इस वचनका विद्वान्को विद्याके साथही अविद्या भी वर्त्ततीहै, यह अर्थ नहीं, किन्तु काल के भेदसे स्थितहुई भी विद्या अरु अविद्या एकही पुरुष विषे सम्बन्धको पावेहै, यह अर्थ है। जैसे शुक्तिका (सीपि) विषे एकही

पुरुषकोरजत अरु सीपिका ज्ञानहोवे है तैसे । अरु जिसकरके "दूर-मेते विपरीते विषूची अविद्या या च विद्येति ज्ञात्वा, इति" दूर वर्त्तमान येविपरीत भिन्न प्रयोजनवालीहै । जो अविद्याहै सो विद्या है यह जानके, । इसप्रकार कठवल्ली बिषे कहा है । ताते विद्याके होते अविद्याका संभव भी नहीं है "तपसा ब्रह्म विजिज्ञासस्व" तपकरके ब्रह्मके जानने की जिज्ञासा (इच्छा) कर, । इत्यादि श्रुतियोंसे तपादिक विद्याकी उत्पत्तिका साधन अरु गुरुकी उपासनादिक जो कर्म हैं सो अविद्यारूप होनेकरके अविद्या कहते हैं। तिस कर्मकरके विद्याको उत्पन्नकरके कामनारूप मृत्युको तरता है, ताते निष्कामहुआ (पुरुष) ब्रह्मविद्या करके अमृत भावको पावताहै,इस अर्थको लखावतीहुई श्रुति " अविद्यया मृत्युंतीर्त्वा विद्ययाऽमृतमश्नुते" अविद्यासे मृत्युको तरके विद्याकरके अमृत को पावता है, । इसप्रकार कहती हैं ॥ अरु जो कहा कि "कुर्व्वन्नेवेह कर्माणि जिजीबिषेच्छꣳसमाः" यहां कर्म को करता हुआ सौ १०० वर्ष पर्यन्त जीवे वा जीवनेकी इच्छाकरे,। इत्यादि श्रुति करके पुरुषका आयु सर्व कर्मसेही व्याप्तहै, सो अविद्वान्का विषय होनेकरके समाधान किया, अन्यथा असम्भव है ताते ॥ [यहां असम्भव शब्दका विरोधसे विद्याके साथही असम्भव से वा कथन करि श्रुति स्मृतिके असम्भव से। यह अर्थ है] अरु जो कहा कि, पूर्वोक्त प्रमाणको भी तुल्यहोने से कर्म से अविरुद्धआत्मज्ञान है, सो सविशेष अरु निर्विशेष होनेकरके निषेध कियाहै। [यहां यह अर्थहै कि निर्विशेष आत्माके ज्ञानको कर्त्ता आदिक कारकों का उपमर्दन (नाश) होनेसे विरुद्धहै ताते। (अर्थात् निर्विशेष आत्मा के सम्यक् ज्ञानसे अविद्या अरु तिसका कार्य अहंकारादि कारक अरु कर्म इन सर्व का नाशहोता है ताते सम्यक् आत्मज्ञान अरु अहं आदि कारकोंका तेजतिमिरवत् परस्परमें विरोधहै)। अरु "उपमर्दं" उपमर्दके हुये, । इस सूत्रकरके अविरोधपना निषिद्ध कियाहै] सो अग्रिम इसके व्याख्यानाबिषे देखावेंगे। [ताते अ-

ग्रिम कहनेकी विद्याका अकर्मीविषे स्थितहोनेपना, कर्मसे असम्बन्धीपना, अरु केवल आत्माको विषय करनेपना, । सिद्धहुआ । इसप्रकार पूर्वोक्त कर्म से अरु उपासना से शुद्ध चित्तवाले, अरु तिसही करके साधन चतुष्टय सम्पन्नहुये मुमुक्षुको केवल आत्मस्वरूपसे स्थितिरूप मोक्षकी सिद्धिके अर्थ केवल आत्मविद्या का आरंभकरतेहैं। इसप्रकार अवतरणिकारूप प्रसंग समाप्तकरतेहैं॥] एतदर्थ केवल निष्क्रिय ब्रह्म अरु आत्माकी एकता की एकता रूप विद्याके (वा एकता प्रतिपादक विद्याके) देखावने के अर्थ अग्रिम प्रसंग प्रारंभ करते हैं॥ हे सौम्य! "आत्मा वा इदमेक एवाग्र आसीत्" (प्रसिद्ध यह एक आत्माही होताहुआ) अर्थात् प्रसिद्ध यह, जो कथन किया नामरूप क्रियाके भेदसे पृथक् जगत् है (अर्थात् नामरूप क्रियारूप भेदवाला जो जगत् है) सो जगत् की उत्पत्तिसे पूर्व व्याप्तहोने से वा भक्षण करनेसे वा निरन्तर रहने से, सर्व से पर (उत्कृष्ट) सर्वज्ञ सर्वशक्तिमान् क्षुधा पिपासादि सर्व संसारके धर्मसेरहित नित्यशुद्ध नित्यबुद्ध नित्यमुक्त स्वभाववाला (अजन्मा, अजर, अमर, अमृत, अभय, अद्वैतरूप, एक आत्माही होता हुआ ॥ क्या अवभी जगत् की उत्पत्तिके अनन्तर सोई एक नहीं है । तहां कहते हैं कि, अब भी सोई एक नहीं है ॥ तब कैसे होताहुआ, तहां कहते हैं । [यद्यपि जगत् का तीनकाल बिषे भी आत्मासे भिन्न करके अभाव है, तथापि तैसा बोधन करने से शिष्यको प्रत्यक्षादि प्रमाण के विरोध की आशंका से उक्त आत्मतत्त्व (ज्योंका त्यों) बुद्धि बिषे आरूढ़ होवेगा नहीं, एतदर्थ उत्पत्तिसे पूर्वथा, इसप्रकार शिष्य के चित्तको अनुसरके कहते हैं । सो भी जगत्के नामरूपकी प्रकटताके अभाव की अपेक्षा करकेही कहते हैं, परन्तु अबहीं (सृष्टिकालविषे) आत्माके केवल भावके अभावके प्रसंग से नहीं । इसप्रकार उत्तर कहते हैं] यद्यपि अब भी सोई एकहै, तथापि तहां विशेष कहिये विलक्षणताहै । उत्पत्ति से पूर्व प्रकट नामरूप

के भेदवाला आत्मरूप " आत्मैकआसीत् " एक आत्माही था, ,इस, शब्द अरु , वृत्तिका , विषय जगत् था औ अब भी प्रकट नाम रूपके भेदवालाहोने से अनेकशब्द अरु वृत्तिकाविषय, अरु एक आत्माथा,इस शब्दका अरुवृत्तिका अविषय जगत्है, यह वि· शेष भेद है। [उक्त अर्थको दृष्टान्तसे स्पष्ट करतेहैं, यहां आत्मा शब्दकी व्युत्पत्तिके बलसे सर्वज्ञादिक शब्द करके लखाया ,स- त्य, ज्ञान, आनन्दरूप अखंड एकरस आत्मा सिद्ध किया। ति- सही अर्थकी दृढ़ता के अर्थ , एक, इत्यादिक पदहैं। तहां ,एक, शब्दसे अन्य आत्माका (सजातीय भेदका) अभाव कहाहै।अ- र्थात् एक इस शब्द करके आत्माबिषे सजातीय भेदका अभाव देखाया। अरु , एव, इस शब्द करके वृक्षादिकों बिषे स्वरूप से एकता के हुयेभी शाखादिकों से नानारूपवत् एकआत्मा की ना- नारूपताका (स्वगत भेदका) अभाव कहते हैं। (अर्थात् जैसे एकही वृक्ष वा शरीरबिषे शाखा आदिकों का वा हस्तपादादिकों का किया स्वगतभेदहै, तैसे एक निराकार निरावयव आत्मा विषे स्वगतभेद भी नहीं। ॥ जैसे जलसे भिन्न ,फेन, वा ,झाग, नामरूपकी प्रकटतावाले होवे हैं। तहां जब जल इस एक शब्द अरु वृत्तिका विषयही सो फेन जब जलसे भिन्न नाम रूपके भेद से प्रकट होवे है, तब जल अरु फेन ऐसे अनेक शब्द अरु वृत्तियोंका विषय होताहै, तहां एक शब्द अरु वृत्तिकाविषय जल ही होताहै, फेन नहीं। (अर्थात् जल जो एकहै तिस बिषे जब लहर झाग बुद्बुदादि होतेहैं तब वो जलसे भिन्न अनेक शब्द अरु अनेकवृत्तियोंकाविषय अनेक नामरूपवाले अल्पक्षण स्थायी पने आदिक धर्मों करके युक्त अपने कारण जलके नामरूप गुण धर्मसे पृथक्ही नामरूप गुण धर्मवाले होतेहैं, परन्तु वास्तव करके उन तरंग झाग बुद्बुद आदिकों की जलसे भिन्न पृथक् सत्ताका अभाव होनेसे उन लहर झाग बुद्बुदादि विशेष बिषेभी एक जलही है जल सत्तासे इतर लहर झाग बुद्बुद नहीं,अर्थात्

एकजलही लहर झाग बुद्बुदादि विशेष नामरूपगुण धर्मसे सुशोभित होता है तद्वत्। "नान्यत्किञ्चन मिषत्, सईक्षत" (अन्य कुछ भी विशेष न था, ईक्षण को करताहुआ ; अर्थात् यह सर्व एक अद्वैत आत्माही था जिससे इतर [सजातीय अरु स्वगत इनदोनों भेदके निराकरण रूप अर्थवाले होनेकरके, एक, अरु एव, ये दोनों पद हैं, इस अभिप्राय से अब विजातीय भेदके निराकरणरूप अर्थवाला होनेकरके " नान्यत्किञ्चन " अन्य कुछ भी न था। इस पदका व्याख्यान करते हैं] व्यापारवाला [जड़ प्रपंचकी कारणरूप जड़माया वर्त्तती है, तब विजातीयभेदका निषेध कैसे संभवे, । इस शङ्कापर। यहां कहते हैं, यहां यह अर्थ है कि मायाके विद्यमानहुयेभी सृष्टिकेपूर्व व्यापारके अभावसे व्यापार वाली अन्यवस्तुका अभावसंभवे है।]औ व्यापाररहित [ननु,व्यापाररहित तिसमायारूप अन्य वस्तुकेभी होते आत्म शब्दकरके उक्त तिसआत्माकी अखण्ड एकरस रूपता कैसे सिद्धहोवेगी, इस शङ्कापर कहते हैं] । अर्थात् सृष्टिसे पूर्व एक अद्वैत अखंड एकरस आत्मासे इतर व्यापारवाला (कार्य) अरु व्यापार रहित (कारण) अन्य कुछभी । नथा जैसे सांख्यवादियों के मतमें आत्मा का पक्षपाती स्वतन्त्र प्रधान है, अरु जैसे वैशेषिक मतवादियोंके मतमें परमाणुहैं, तैसे यहां हमारे मतविषे आत्मासे इतर रञ्चकमात्र कुछभी वस्तु नहीं है, किन्तु एक आत्माही था, यह अभिप्रायहै । सो आत्मा सर्वत्र अपने सद्भावके होनेसे एकरूप हुआ ईक्षण करताहुआ । अर्थात् ईक्षण कहिये अवलोकन करताहुआ। ननु जगत्की उत्पत्तिसे पूर्व तिसको अकार्य कारणरूप होनेसे कैसे वा क्या ईक्षण करताहुआ । अर्थात् जगदुत्पत्तिके पूर्व जब आत्मासे इतर कार्य कारण रञ्चकमात्रभी न था तब वो निराकार निरवयव आत्मा कैसे अरु क्या अवलोकन करताहुआ, किन्तु तिस कालमें उसका अवलोकन करना अघटित है । तहां यह दोष नहीं है, क्योंकि वो आत्मा सर्वज्ञ स्वभाववाला है ताते अरु अ-

पाणिपादो जवनो गृहीता, इत्यादि" हस्तपादसे रहित हुआ चलताहै अरु ग्रहण करताहै, । इत्यादि रूप मन्त्रका प्रमाण है ॥ अर्थात् वो सर्वभेदरहित एक अद्वैत सर्वशक्तिमान् आत्मा जो अपने बिषे गमनरूप क्रियाका साधन पादरूप अवयव को न रखताहुआ विनाही पादरूप करणके गमन करता है, अरु तैसेही विना हस्तरूप करण अवयव के ग्रहण करता है, तैसेही वो विनाही चक्षुरूप वाह्य करण अरु मनरूप अन्तःकरणके ,ईक्षण, कहिये अवलोकन वा इच्छा करता है। अरु वो आत्मा अविनाशीहै अतएव उसकी सर्वशक्तिभी अविनाशीहै, सुषुप्तिअवस्थामें चक्षु मनआदि सर्व करण अपने कारण अविद्या में लय होते हैं तब तहां उन करणोंके अभावको अरु एक कारण अविद्याकेभाव को विनाही करणोंके देखनेवाला सर्वका द्रष्टा आत्मा ,,घटद्रष्टा घटाद्भिन्नः,,इसनाय प्रमाण दृश्यरूप सुषुप्तिसे भिन्नही है। ऐसा जो अलुप्त सर्वशक्तिमान् एक अद्वैत आत्मा सो नाम रूप कार्य कारणात्मक सर्व जगदुत्पत्तिके पूर्व अपनी अचिन्त्य अलुप्त सर्व शक्तिमत्ताको देखताहुआ, इसप्रकार उस आत्माविषे ईक्षण शब्द के उभय अर्थ, अवलोकन करना, अरु इच्छा करना युक्त अरु निर्दोषहीहैं। ॥ सो किस अभिप्रायसे ईक्षण (अवलोकन) करता हुआ तहां कहते हैं, मैं प्राणियोंके कर्मफलके उपभोग स्थानापन्न जलादिका भोग्य सामग्रीको सृजों "। लोकानुसृजा इति,"। (लोकों को निश्चयकरके सृजों ऐसे) अर्थात् इस समस्तनाम रूप क्रियात्मक जगत्से पूर्व जो सर्वका कारण एक अद्वैत आत्माथा सो, मैं इन सर्व प्राणियोंके पापपुण्यरूप सञ्चित कर्मोंकेफल भोगार्थ प्रथम उपभोगके स्थानरूप जलादिकलोकों को सृजों, इसप्रकार विचारके "स इमाँल्लोकानसृजत" (सो इन लोकों को सृजता हुआ) अर्थात् सो परमात्मा उक्तप्रकार ईक्षण करके प्राणियों के कर्म भोगार्थ इन अग्रिम कहने के लोकों को सृजताहुआ ॥ हे सौम्य ! यह अन्तका श्रुतिवाक्य अग्रिम कहने के मन्त्रके आदि

स इमाँल्लोकानसृजत । अम्भो मरीचीर्मरमापोऽदोऽम्भः परेणदिवंद्यौः प्रतिष्ठाऽन्तरिक्षं मरीचयः । पृथिवी मरोया अधस्तात्ता आपः ॥

में है, परन्तु इस उक्त मन्त्र के अन्तका जो " सईक्षत लोकानु सृजा इति " यह वाक्यहै तिसके साथ उसका सम्बन्ध है, एतदर्थ उस वाक्यकी इस मन्त्रके साथ व्याख्या कियाहै १ ॥

हे सौम्य, [यहां ईक्षणपूर्वक सृष्टिके कथनका प्रयोजन सृष्टिकर्त्ता के चैतन्यभाव की सिद्धिही है, इस अभिप्राय से तिसप्रकार के तक्षा (शिल्पि आदिक) चेतनभावके उदाहरण करके कहते हैं] जैसे यहां बुद्धिमान् शिल्पि आदिक, इसप्रकार के गृहादिकनको मैं सृजों ऐसे ईक्षणको करके तिस ईक्षण के अनन्तरगृहादिकन को सृजताहै तैसे ॥ ननु पाषाणादिक उपादान सहित जो शिल्पि आदिक होते हैं सो गृहादिकन को सृजता है, परन्तु उपादानसे रहित जो आत्मा सो कैसे लोकनको सृजता है, तहां यह दोष नहीं है, क्योंकि जलस्थानी अरूप अरु आत्मा एक था, इस शब्द के वाच्य उपादान रूप अव्याकृति विषे प्रकटहुये फेन स्थानी जगत् का संभव है, ताते आत्मभूत नामरूप का उपादानहुआ सर्वज्ञ आत्मा जगत्को रचताहुआ यह विरुद्ध नहींहै अथवा जैसे विज्ञानवाला मायावी आपते भिन्न उपादान से रहितहुआ आपकोही आपके भीतर होने करके आकाशविषे चलते हुयेवत् रचताहै,तैसे सर्वज्ञ सर्व शक्तिमान् महामायावालादेव अपनेकोही अपनेभीतर होनेकरके जगत्रूपसे रचताहै यह अत्यन्तयुक्तहै। अरु इसप्रकार होनेसे कार्य अरु कारण दोनोंके असद्वादादि पक्ष प्राप्तहोतेनहीं,अरु वोजो कदापि प्राप्तहुयेहोवें तो भी निषेधकिये जाते हैं ॥ प्र० ॥ सो आत्मा किन लोकोंको सृजता हुआ, तहां कहते हैं । " अम्भो मरीचीर्मरमापो ऽ दोऽम्भः परेण दिवं द्यौः प्रतिष्ठा ऽतरिक्षं मरीचयः पृथिवी मरोयाअध-

स्ताता आपः ॥ २ ॥ ।" (अंभमरीचीर्या मर अरु आप इनको) अर्थात् सो आत्मा अंभ मरीचीर्यामर अरु आप इनको सृजता हुआ अर्थात् [लोकनको भौतिक होनेसे अरु ब्रह्मांडके अन्तर्वर्ती होनेसे भूतोंकीसृष्टि अरु तिनके पंचीकरणद्वारा ब्रह्मांडकी सृष्टिके सृजनेके अनन्तर तिन (पंचभूतों के कार्यरूप) लोकनकी सृष्टि है (तिनके अनन्तर उनलोकों परकी प्रजारूपा सृष्टिहै । इसप्रकार गुणोपसंहार न्यायको आश्रयकरके कहते हैं। अरु भिन्नशाखागत अर्थोंका जो एक ठेकाने कथन, तिसको गुणोपसंहार न्यायकहते हैं ।] आकाशादिकों के क्रमसे ब्रह्मांडको उत्पन्न करके जलादिक लोकनको सृजताहुआ । तहां जलादिकों को आपही श्रुति व्याख्यान करेहै, यह जो जल शब्दका वाच्यलोक है सो (स्वर्ग लोकसे पर अरु आश्रय स्वर्ग लोकरूपहै, अन्तरिक्ष मरीचियां, पृथिवी सो मर है, जो अधः सो आप कहिये है) अर्थात् स्वर्ग लोकसे पर जो महर् आदिलोकहैं, अरु जो तिस जलरूप लोकका आश्रय स्वर्ग लोकरूप है, क्योंकि तिनमहरादि लोकोंविषे वृष्टि जलकेविद्यमानहोनेसे (अर्थात् इस पृथिवीलोकमेंवृष्टि होनेवाला जल महर्लोकादिकोंमेंरहताहै वहांसे पृथिवीपर वृष्टिहोतीहै ऐसा नहीं समझना क्योंकि पृथिवीपर वर्षा होनेवाला पृथिवीपरका जलसूर्यकी किरणोंकरके आकर्षितहुआ ऊर्ध्वकोजाताहै परन्तु वो जल पृथिवीके विशेष आकर्षणमें होनेकरके पृथिवीसे एकयोजन की अवधि पर्यन्त ऊर्ध्व को जाताहै पुनः वृष्टिरूप से पृथिवीपर आवता ताते, । अरु जो यहां कहा है कि महरादि लोकों विषे वृष्टि जल विद्यमान होनेसे स्वर्ग लोकसे पर है तिसको इस प्रकार जानना कि जैसे पृथिवीपर वर्षा होतीहै अरु तिसकरके यथेष्ट बहु अन्न होनेसे प्रजा प्रसन्नता से जीवती है ताते पृथिवी लोकसे पर (श्रेष्ठ) जलहै । तैसे महरादि लोकोंविषे भी जलको परत्व जानना । ॥ अरु जो स्वर्गलोक से नीचे अन्तरिक्ष है (अर्थात् सूर्याख्य स्वर्गलोक से नीचे अरु पृथिवी के ऊपर मध्य

का जो आकाशहै तिस को अन्तरिक्ष कहते हैं । सो मरीचियां है । यहां सूर्य के किरणों के वाची मरीची शब्दसे लखाया जो अन्तरिक्ष सो एकहुआ भी अनेक स्थानों के भेदवाला होने से बहुवचनका भागी है । वा सूर्यके किरणरूप अनेक मरीचियों के सम्बन्धसे सो अन्तरिक्ष लोक बहुवचन का भागी है ॥ । अथवा सूर्य अरु पृथिवी इनके मध्य में चन्द्र गोलादिव बहुत से गोलहैं तिनपर प्रजाके होनेसे अरु सूर्य पृथिवी के अन्तरिक्ष में होने से उनको अन्तरिक्षलोक बहुवचन से कहते हैं । ॥ अरु जिसविषे भूत (प्राणी) मरते हैं ऐसी जो पृथिवी सोम रहै । अरु जो पृथिवी के नीचे लोकहैं वे आप नाम से कहेजाते हैं । [ननु, उक्त लोकन को पंचभूतों से सम्बन्धकी तुल्यता के होने से अन्य भूतनसे पृथिवी आदिकों के ऊपर के लोक देखते हैं । अरु । उक्त । अन्तरिक्ष (आकाश) को मरीचि (सूर्य के किरण) से भिन्न अन्य मेघादिरूप पदार्थों से भी सम्बन्ध से, तिससे पृथिवी को । अरु तिससे नीचे के लोकन को, मरणकी प्राप्ति से भिन्न गमनादिक अन्यक्रियाकेही सम्बन्धसे सो अधोलोक जाननेको योग्यहैं इसप्रकार वादी शंका करे है] यद्यपि इनलोकन को पंच महाभूतोंका सम्बन्धीपना है, तथापि [तिन लोकों विषे जलादिकों कीही बाहुल्यताहै ताते तिन जलादिकनसेही वे लोक जानने के योग्यहैं “ प्राचुर्येण व्यपदेशा भवन्तीति न्यायात् ” बाहुल्यता करके तिनके नामसे कथन होतेहैं, । इसन्यायसे ॥ । अर्थात् जिस लोकविषे जिस तत्त्व वा पदार्थकी बाहुल्यता होती है सो उसही नामसे कहाजाता है । इसप्रकार परिहार करते हैं] तिनमें जलादिकों की बाहुल्यता से वे जलादिक नामसेही “ अम्भोमरीची मरमापो ” अंभ मरीचि मर अरु जल, । ऐसे कहते हैं २ ॥

हेसौम्य, [यहां “आत्मा वा इदमग्र आसीत्” आगे आत्माही था, इस वाक्य करके उक्त आत्माके ज्ञानसे संसारी । पुरुष जोहै, सो मुक्तकरनेको योग्य होनेकरके । तिनकेअर्थ । कहनेको इच्छित

स ईक्षतेमे नु लोका लोकपालान्नुसृजा इति । सो-ऽद्भ्य एवपुरुषं समुद्धृत्यामूर्च्छयत् ३ ॥

है ताते, अरु असंसारी को मोक्षका असंभवहै ताते। अरु संसार जो है सो संसारके आश्रयलोक अरु तिसके उपाधिभूत लिंग शरीर अरु तिनके अभिमानी देव अरु तिनके अधिष्ठान स्थूल शरीर, अरु संसाररूप क्षुधादि धर्म अरु तिस संसार के अभिमानी तिनके भोक्ता विना नहीं संभवे है, एतदर्थ तिसकी सृष्टि को "अयमावसथ" यह आवसथ (स्थान) है यहां पर्यन्त जे ग्रन्थहैं, तिन करके क्रम से कहते हुये संसारके अधिष्ठानरूप लोकनकी सृष्टि को करके,लोकपाल देवताओंकी सृष्टि के ईक्षणद्वारा समष्टि स्थूल शरीरकी, अरु समष्टि लिंग शरीरकी अरु तिनके अभिमानी देवताओं की सृष्टि के कहनेका आरंभ करते हैं।] सर्व प्राणियों के कर्म फल अरु तिसके उपादान अरु साधनरूप पूर्वोक्त चारो लोकों को सृजके " सईक्षते मेनुलोका लोकपालान्नु सृजा इति" (सो यह तो लोक,लोकपालोंको निश्चय करके सृजो इसप्रकार ईक्षण करताहुआ) अर्थात् सो ईश्वर पुनःही यह तो जलादिक मुझकरके रचेहुये लोक अपने पालन करता से रहित हुये नाश को प्राप्त होवेंगे, अतएव इनके रक्षणार्थ मैं लोकपालों को निश्चय करके सृजूं इसप्रकार ईक्षण करताहुआ। [समष्टि लिंग शरीर अरु तिन लोकपालनके अभिमानियों को, विराट् के अवयवपने से जन्य होनेते तिनकी सृष्टि के अर्थ विराट् की सृष्टि को कहते हैं। यहां यह भाव है कि, यद्यपि " अण्डमुत्पाद्याम्भः प्रभृतीन् लोकानसृजतेति " ब्रह्माण्डको उत्पन्न करके जलादिक लोकनको सृजताहुआ, इस वाक्य करके भाष्यकार स्वामी ने लोकनकी उत्पत्ति से पूर्वही ब्रह्माण्डोत्पत्ति कहीहै, तथापि तिसही उत्पत्ति का लोकपालनकी सृष्टिके अर्थ यहां अनुवाद करते हैं याते विरोध नहीं] इसप्रकार इक्षणकु करके " सोऽद्भ्य

तमभ्यतपत्तस्याभितप्तस्यमुखंनिरभिद्यतयथाऽण्डम्। मुखाद्वाग्वाचोऽग्निर्नासिके निरभिद्येतांनासिकाभ्याम्प्राणः प्राणाद्वायुरक्षिणी निरभिद्येतां । अक्षिभ्याञ्चक्षुश्चक्षुष आदित्यः कर्णौनिरभिद्येतां। कर्णाभ्यांश्रोत्रं। श्रोत्राद्दिशस्त्वङ्निरभिद्यत । त्वचोलोमानि। लोमभ्य ओषधिवनस्पतयो । हृदयं निरभिद्यत । हृदयान्मनो। मनसश्चन्द्रमा । नाभिर्निरभिद्यत । नाभ्या अपानोऽपानान्मृत्युः। शिश्नं निरभिद्यत। शिश्नाद्रेतोरेतसःआपः ४ ॥

इति प्रथमखण्डः ॥

एव पुरुषं समुद्धृत्यामूर्च्छयत्" (सो जल से पुरुष को ग्रहण करके मूर्च्छित करताहुआ) अर्थात् सो जल उपलक्षण करके जलप्रधान पंचभूतों से युक्त जलादिक चार लोकन को सृजताहुआ। तिनलोकोंसेही पुरुषके आकारकरकेयुक्त शिर हस्त पाद आदिक अवयवोंवाले विराट् (नामवाले (पुरुषको ग्रहण करके, पृथिवी से ग्रहणकिये मृत्तिकाके पिण्डको कुलालवत् मूर्च्छित करताहुआ (अर्थात् भूतों के अवयवों से अपने अवयवों की योजना कर मिश्रित करताहुआ (३ ॥

हे सौम्य [उक्तप्रकार विराट्की उत्पत्ति को कहके अब तिस के अवयवों से लोकपालोंकी उत्पत्ति को कहते हैं] "(तमभ्यतपत्तस्याभितप्तस्य मुखं निरभिद्यत यथाऽण्डम्"((तिसकेअर्थ सर्व ओरसे तपताहुआ, तिस सर्वओरसे तप्तका मुख भेदको प्राप्त हुआ, जैसे अण्ड) अर्थात् तिस पुरुषाकारवाले पिण्डके अर्थ उद्देश करके (अर्थात् प्रथम जब परमात्माने पांचों तत्त्वों का पुरुषाकार एक विराट्नामक मृत्तिकाकी प्रतिमावत् एक कल्बूत बनाया तिससमय उस विराट्नाम पिण्ड का आकार पुरुषाकारवत् शिर हस्त पादादि आकारवाला था परन्तु उससमय उसके

मुखादिक इन्द्रियों के गोलकरूप छिद्र नथे तिनकी रचनाके उ-
द्देशसे (वो परमात्मा सर्वओरसे तपको तपताहुआ, अर्थात् तिससे
सङ्कल्प वा (विचार) वा ज्ञान, को करताहुआ "तस्य ज्ञानमयंतप"
तिसका ज्ञानमय तप है, । तिस रूप तपसे सर्वओरसे तप्त (ज्ञान
को प्राप्त) ये पिण्डका मुख (मुखाकारवाला छिद्र) भेदको पावता
हुआ कहिये होताहुआ, जैसे पक्षीका अण्डा भेदको पावताहै तैसे
इसप्रकार तिस भेदको प्राप्तहुये "मुखाद्वाग्वाचोऽग्निर्नासिके नि-
रभिद्येतां । नासिकाभ्यां प्राणः प्राणाद्वायुरक्षिणी निरभिद्येतां ।
अक्षिभ्याञ्चक्षुश्चक्षुष आदित्यः कर्णौनिरभिद्येतां । कर्णाभ्यां श्रोत्रं ।
श्रोत्राद्दिशस्त्वंनिरभिद्यत । त्वचोलोमानि । लोमभ्य ओषधि वन-
स्पतयो । हृदयंनिरभिद्यत हृदयान्मनो । मनसश्चन्द्रमा । ना
भिर्निरभिद्यत । नाभ्या अपानोऽपानान्मृत्युः । शिश्नंनिरभिद्यत ।
शिश्नाद्रेतो रेतसः आपः" (मुखसे वाक् वाक्से अग्नि दो नासिका
भेदको प्राप्तहोतीहुई, तिस नासिकासे प्राण प्राणसे वायुहोता
हुआ । दोनोंनेत्र भेदको पावतेहुये नेत्रसे चक्षु चक्षुसे सूर्य होता
हुआ । दो कर्ण भेदको पावतेहुये कर्णोंसे श्रोत्र श्रोत्रसे दिशा होती
हुई । त्वचा भेद को पावतीहुई त्वचा से लोम लोम से ओषधि
वनस्पति होतीहुई । हृदय भेदको पावताहुआ हृदयसे मन मन
से चन्द्रमा होताहुआ । नाभि भेदको पावतीहुई नाभिसे अपान
अपानसे मृत्यु होताहुआ । शिश्न भेदको पावताहुआ शिश्न से
रेत रेतसे जल होताहुआ? अर्थात् मुखसे वाक् इन्द्रियरूप करण
होताहुआ, अरु तिस वाक्से वाक्का अधिष्ठान अग्नि लोकपाल
रूप देवता होताहुआ, तैसेही दोनों नासिकाके छिद्र भेदको पा-
वतेहुये तिस नासिकारूपसे प्राण गोलकरूप (वा गन्धविषयका
ग्राहकरूप) करण होताहुआ । (यहां प्राण शब्दकरके प्राणवृत्ति
सहित घ्राणेन्द्रिय को जानना) । तैसेही तिस प्राणसे वायुरूप
देवता होताहुआ । तैसे दोनोंनेत्रके छिद्ररूप गोल भेदको पावता
हुआ तिस नेत्रसे चक्षुरूप करण होताहुआ तिस चक्षुसे सूर्यरूप

अथ द्वितीयः खण्डः ॥

ता एता देवताः सृष्टा अस्मिन्महत्यर्णवे प्रापतंस्तमशनायापिपासाभ्यामन्ववार्जत् । ता एनमब्रुवन्नायतनंनः प्रजानीहि । यस्मिन् प्रतिष्ठिता अन्नमदामेति १।५ ॥

देवता होताहुआ । तैसेही दोनों कर्णरूप छिद्र भेदको पावतेहुये तिन कर्णोंसे श्रोत्रेन्द्रिय रूप करण शब्द विषयका ग्राहक होता हुआ तिस श्रोत्रसे दिशारूप देवता होतीहुई । तैसेही त्वचारूप गोलक भेद को पावताहुआ तिस त्वचासे रोम होतेहुये रोम से ओषधि अरु वनस्पतियां होतीहुई । (यहां ओषधि अरु वनस्पति शब्दकरके तिनका अधिष्ठाता देवता कहते हैं) । तैसेही हृदय कमलरूप मांसपिंडि विशेषगोलक भेदको पावताहुआ तिस हृदय से मनरूप अन्तःकरण होताहुआ, तिस मनसे चन्द्रमारूप देवता होताहुआ । तैसेही सर्व प्राणों के रहने का स्थान नाभी भेद को पावताहुआ तिस नाभिसे अपान (पायु, गुद, इन्द्रिय) होता हुआ तिस अपान से मृत्युरूप देवता होताहुआ । तैसेही शिश्न (उपस्थ इन्द्रियकागोलकस्थान) भेदको पावताहुआ तिस शिश्न से रेत (उपस्थ इन्द्रिय) होताहुआ । (यहां रेत शब्दकरके शिश्नेन्द्रिय स्थानवाला रेतका सम्बधी उपस्थ इन्द्रिय कहते हैं । तिसको रेतके त्यागरूप अर्थवाला होने से रेतका सम्बंधीपना है) तिस रेतसे जल (अर्थात् प्रजापतिरूप देवता) होताहुआ ४ ॥

इति प्रथमाध्यायगत प्रथमखण्ड भाषाभाष्य समाप्तः ॥

अथप्रथमाध्यायगतद्वितीयखण्डभाषाभाष्यप्रारभ्यते ॥

हे सौम्य, [इसप्रकार समष्टि इन्द्रियों की अरु तिनके अभिमानी देवताओं की उत्पत्ति कहके, अब तिन देवताओं के भोगने के योग्य अल्पव्यष्टि देहकी सृष्टिको अरु तिन विषे देवता के भोगार्थ व्यष्टिरूपसे प्रवेशको कहने को इच्छाकरतेहुये तिनकी उपोद्घातरूप होनेकरके क्षुधा तृषाकी सृष्टि को देखावते हैं]

"ता एता देवताः सृष्टा" सो (यह अग्न्यादि देवता सृजेहुये) अर्थात् सो यह अग्निआदिक देवता लोकपालपने करके कल्पना कर ईश्वर करके सृजेहुये [क्षुधा आदिककी सृष्टिबिषे उपयोगी होनेकरके इन देवतों के स्वरूप के अज्ञान पूर्वक जो ब्रह्माण्डरूप संसारबिषे पतनहै अरु आसक्तपना है अरु तनमात्रापनेकी तिस रूपताके अभिमान से बद्धपना है तिसको कहते हैं] अविद्या काम अरु कर्म करके उत्पन्न हुये दुःख की आधिकतावाले अरु तीव्ररोग जरा अरु मृत्युरूप ग्राहवाले अरु अनादि अनन्त अपार निराश्रय अरु विषय अरु इन्द्रियनके सम्बन्ध से जनित सुखके लेशरूप विश्रामवाले अरु पंच इन्द्रियन के विषय अरु विषयों की तृष्णारूप वायुके किये क्षोभते उठी उँची उँचा सहस्रसः अनर्थरूपा लहरियोंवाले, अरु महा रौरवादिक अनेक नरकगत हाहा आदिक शब्दों के पुकारसे प्रकट हुये महाशब्दवाले,अरु सत्य आर्जव दान दया अहिंसा दम शम धैर्य आदिक दैविसम्पदा आत्माके गुणरूप मार्गके भोजनसेपूर्ण ज्ञान रूप नौकावाले, अरु सत्संग अरु संन्यासरूप ज्ञानमय नौका की प्रवृत्तिके हेतु मार्गवाले, अरु मोक्षरूपपार तीरवाले, ऐसे " अस्मिन्महत्यर्णवेप्रापतं" (इस बड़े समुद्रबिषे पतनहोतेहुये) अर्थात् इस उक्तप्रकारके संसाररूप महासागरमें गिरते हुये । ताते अग्न्यादि देवताओं की प्राप्तिरूप वी जो ज्ञानकर्म के समुच्चय के अनुष्ठानकी फलरूप गति व्याख्यानकिया सो भी संसार के दुःख के निवृत्ति के अर्थ परिपूर्ण नहीं है । यह यहां कहने को इच्छित अर्थ है अरु जिसकरके ऐसे है तिसही से इसप्रकार जानके सर्व संसार दुःखकी निवृत्ति के अर्थ अपना अरु सर्वभूतों का आत्मा जो अग्रिम कहने के विशेषणवाला,औ,,उत्पत्तिसे पूर्व यह एकही आत्माथा,, इत्यादिक वाक्य करके जगत्की उत्पत्ति स्थिति अरु संहारका हेतु होनेकरके प्रसंगबिषे प्राप्तहुआ है, सो परब्रह्म जान ने को योग्य है । (ननु, ,,यह ज्ञान) मार्ग है, यह कर्म है, यह ब्रह्म

है, यह सत्य है,, इसप्रकार आरम्भ करके ,,उक्थ (प्राण) ऐसे प्रसिद्ध है,, इत्यादि वाक्य से कर्मसम्बन्धी सगुण ब्रह्म आत्मा के ज्ञानकोही कथन कियाहै ताते तिसही को मोक्षकी साधनताहै, उक्त केवल आत्मज्ञानमात्र को नहीं । यह आशंका करके "। एष पन्था "। यह (ज्ञान) मार्ग है, । ब्रह्मात्माका ज्ञानही कहा है, कर्म समुच्चित ज्ञाननहीं, क्योंकि तिस कर्मसमुच्चित ज्ञानको उक्त वाक्य करके संसारकी हेतुताके जानने से सत्यता के असंभव से ऐसे कहते हैं] जिसकरके कर्मसहित प्राणके ज्ञानको संसाररूप फलवान्‌पनाहै ताते "एष पन्था" यह (ज्ञान) मार्ग है, । यह कर्म है, यह ब्रह्महै, यह सत्यहै,, इस श्रुति विषे "एष" यह, । पदकरके जो यह परब्रह्म औ आत्माका ज्ञान है सोई कहाहै, क्योंकि ["त-मेवविदित्वातिमृत्युमेति, नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय "। तिसही को जानके मृत्युको लंघताहै, मोक्षके अर्थ अन्यमार्ग नहीं, । इस वाक्य से भी केवल आत्माके ज्ञानसे अन्य मार्ग के निषेध से भी उक्त ज्ञानरूपही मार्गहै, इसप्रकार कहते हैं । यहां यह भावहै कि "एष पन्था" यह मार्ग है, । इसप्रकार ब्रह्मात्मा के ज्ञानका आ-रम्भकरके मध्याविषे प्राणकी उपासनाका कथन तो प्राणकी उपा-सनासे चित्तकी एकाग्रताके हुये अरु तिसकेफल (विवेकरूप दोष दृष्टि) से वैराग्यकेहुये "एष पन्था" यह मार्ग है, । ऐसे प्रारंभ किया मुख्य ज्ञान कहने को शक्य है, इस अभिप्रायसेहै । यद्यपि इस वाक्यसे व्याख्यानके अवसरविषे कर्ममार्ग भी मार्ग शब्द का अर्थ होनेकरके कहा है, तथापि सो कर्ममार्ग ज्ञानमार्ग का उपाय होनेकरके कहाहै, प्रधानतासे नहीं कहा, यह अभिप्रायहै] "नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय" मोक्षके अर्थ अन्य मार्ग नहीं, । इस मन्त्रवर्ण से ॥ तिस स्थान करण अरु देवताकी उत्पत्तिके बीज-रूप प्रथम उत्पन्नकिये विराट् पुरुषमय पिंडरूप आत्माको "त-मशनापिपाशाभ्यामन्ववार्जत् । ताएनमब्रुवन्नायतनं नः प्रजानीहि । यस्मिन् प्रतिष्ठिता अन्नमदामेति "। तिसको क्षुधा तृषा

ताभ्यो गामानयत्ता अब्रुवन्न वै नोयमलमिति । ताभ्योऽश्वमानयत्ता अब्रुवन्न वै नोऽयमलमिति २ । ६ ॥

करके योजना करताहुआ, इसकेताईं कहतेहुये हमारेअर्थ स्थान को निर्माणकरो जिस विषे समर्थहुये हम अन्नको भक्षण करें, अर्थात् तिस विराट् पुरुषमय पिंडरूप आत्माको क्षुधा तृषाकरके योजना करताहुआ, तिस कारण रूप विराट् पुरुषको क्षुधादिक दोषयुक्त होनेसे तिसके कार्यरूप देवताको क्षुधादिक दोषवान् पनाहै, ताते वे देवता क्षुधा तृषाकरके पीड़ितहुये इस सृजनेवाले परमेश्वर रूप पितामह के अर्थ कहतेहुये कि हमारे अर्थ स्थान (शरीर) को निर्माणकरो कि जिस स्थानविषे समर्थहुये हम अन्न को भक्षण करें १ । ५ ॥

हे सौम्य! उक्तप्रकार जब तिन (देवताओं) ने कहा तब ईश्वर "(ताभ्यो गामानयत्ता अब्रुवन्न वै नोऽयमलमिति") (तिन के अर्थ गौ(ल्यावता) वा देखावताहुआ, वे कहते हुये यह हमारे अर्थ पूर्ण नहीं है, अर्थात् तिन देवताओं के अर्थ गौ(गौकी आकृति करके युक्त पिंड) को तिनजल (आदितत्त्वों) से ही पिंडविषे ग्रहण करके (मूर्छितदृढ़) होनेकरके परस्पर अवयवोंकीयोजना से सृजिके ल्यावता वा देखावताहुआ । तब वो देवता पुनः तिस गौकी आकृतिवाले पिंडको देखके कहतेहुये कि यह पिंड हमारे अर्थ स्थित होयके अन्न भक्षणको निश्चय करके पूर्ण कहिये (योग्य वा समर्थ) नहीं, क्योंकिं इस गौ शरीर में ऊपर के दंतका अभाव होने से दूर्वादि तृणके मूलको उखाड़नेविषे असमर्थताहै ताते ॥ गौकेनिषेध कियेहुये (अर्थात् देवताओंनेगौका शरीर ग्रहण करनेबिषे निषेधकिया) तब तैसे ही"(ताभ्योऽश्वमानयत्ता अब्रुवन्नवैनोऽयमलमिति") (तिनके अर्थ अश्वको ल्यावता वा देखावताहुआ, वे कहतेहुये कि हमारे अर्थ निश्चय करके पूर्ण नहीं है, अर्थात् जब देवताओंने गौ का निषेध किया तब तिनके अर्थ

ताभ्यः पुरुषमानयत्। ता अब्रुवन् सुकृतं बतेति पुरुषो वाव सुकृतम्। ता अब्रवीद्यथाऽऽयतनं प्रविशतेति ३।७॥

उभय ओर दन्तवाला होनेकरके उक्त दोषके अभाव से अश्वको ल्यावता कहिये देखावताहुआ। तब वो (देवता) कहतेहुये कि यह पिंड हमारे अर्थ स्थित होयके अन्नके भक्षणको निश्चय करके पूर्ण नहीं है। इसप्रकार [यहां गौ अरु अश्वके ग्रहणको सर्व तिर्यग्देहके उपलक्षक होने से इस अभिप्रायसे सर्वपदकहा है। यह अर्थ है] सर्वके निषेधकियेहुये २।६॥

हे सौम्य! उक्त प्रकार जब देवताओं ने सर्वका निषेध किया तब "(ताभ्यः पुरुषमानयत्, ता अब्रुवन् सुकृतंबतेति") "तिनके अर्थ पुरुषको ल्यावता वा देखावताहुआ, वो निश्चय करके सुकृत है ऐसे कहते हुये" अर्थात् तिनदेवता के अर्थ स्वयोनिरूप (विराट् पुरुषके देहके सजातीय) पुरुष (रूपपिंडाको देखावता हुआ, वो देवता अपनी योनिरूप पुरुषको देखके खेद से रहितहुये यह शरीर निश्चय करके सुकृत है इसप्रकार कहते हुये "(पुरुषो वाव सुकृतम्, ता अब्रवीद्यथाऽऽयतनंप्रविशतेति") "पुरुषही सुकृत है, तिनको कहताहुआ यथा योग्य स्थानबिषे प्रवेशकरो" अर्थात् तिस करके पुरुषही सर्व पुण्यकर्म रूप सुकृत का हेतु होनेसे यह सुकृत है, वा परमेश्वर ने अपनेही स्वरूप से अपनी मायाकरके कियाहोने से तिस (पुरुष शरीर को सुकृत कहते हैं, पश्चात् ईश्वर जिस करके [इसप्रकार व्यष्टि देहकी सृष्टिको कहके, अब तिनबिषे करणों के अरु देवतों के व्यष्टिरूपसे प्रवेशको कहते हैं] सर्व अपनी योनिरूप शरीरोंबिषे रुचिकरते हैं, एतदर्थ यह शरीर देवताओं को प्रिय है, ऐसा मानके उन देवताओं से कहताहुआ कि यथायोग्य स्थानबिषे, अर्थात् जिसका जो वचनादि क्रिया योग्य स्थान है तिसबिषे प्रवेशकरो ३।७॥

अग्निर्वाग्भूत्वा मुखं प्राविशद्वायुः प्राणो भूत्वा नासिके प्राविशदादित्यश्चक्षुर्भूत्वाऽक्षिणी प्राविशद्दिशःश्रोत्रंभूत्वा कर्णौप्राविशन्नोषधिवनस्पतयोलोमानि भूत्वा त्वचं प्राविशंश्चन्द्रमामनोभूत्वा हृदयं प्राविशन् मृत्युरपानो भूत्वा नाभिं प्राविशदापोरेतो भूत्वा शिश्नं प्राविशत् ४।८॥

हे सौम्य! जैसे राजाकी आज्ञा पायके तथाऽस्तु इस प्रकार कहके सेनापति आदिक नगरबिषे प्रवेश करते हैं, तैसे ईश्वर की आज्ञापायके "। अग्निर्वाग्भूत्वा मुखं प्राविशद्वायुः प्राणोभूत्वा नासिके प्राविशदादित्यश्चक्षुर्भूत्वाऽक्षिणी प्राविशद्दिशः श्रोत्रं भूत्वा कर्णौप्राविशन्नोषधिवनस्पतयो लोमानि भूत्वा त्वचं प्राविशंश्चन्द्रमामनोभूत्वा हृदयं प्राविशन् मृत्युरपानोभूत्वानाभिं प्राविशदापोरेतो भूत्वा शिश्नंप्राविशत्"। (अग्नि वाक्रूपहोके मुख बिषे प्रवेश करताहुआ, वायुप्राण होयके नासिकाबिषे प्रवेश करताहुआ, आदित्य चक्षु होयके नेत्र बिषे प्रवेश करता हुआ, दिशा श्रोत्र होयके कर्णों बिषे प्रवेश करतीहुई, ओषधि अरु वनस्पति रोम होयके त्वचा बिषे प्रवेश करतेहुये, चन्द्रमा मनरूप होयके हृदय बिषे प्रवेश करता हुआ, मृत्यु अपान होयके नाभि बिषे प्रवेश करताहुआ, जल रेत होयके शिश्न बिषे प्रवेश करताहुआ) अर्थात् वाक्का अभिमानी जो अग्नि सो वाक् [यद्यपि वाक्का अभिमानी अग्नि है, वाक्ही नहीं है तथापि तिस अग्निकी वाक्बिना प्रत्यक्ष अप्रतीति से, अरु तिस वाचा के भी देवताबिना अपने विषय के ग्रहण में सामर्थ्य के अभावसे तिनके अकेली तादात्म्य करिके अभेदका कथन है, इसप्रकार कहते हैं।] यद्यपि देवताका ईश्वर ने वा श्रुति ने प्रवेश कहा है तथापि करणों के बिना तिन देवता के साक्षात् भक्षणादि भोगके असम्भव से तिन करणोंका भी प्रवेश अर्थ से

तमशनाया पिपासे अब्रूतामावाभ्यामभिप्रजानीही ति। सते अब्रवीदेतास्वेव वा देवता स्वाभजाम्येतासुभा गिन्यौ करोमीति। तस्माद्यस्यैकस्यैचदेवतायैहविर्गृह्यते भागिन्यावेवास्यामशनायापिपासे भवतः ५।६॥

इति द्वितीयखण्डः॥

कहाही है। ताते तिनकाभी प्रवेश कहा जानना॥ [अर्थात् "अग्निर्वाभूत्वामुखंप्राविशत्" इत्यादि कहने से स्पष्ट विदित होताहै कि अग्नि आदिक देवताओं ने वागादिक करणोंका रूप धारके मुखादि गोलकों बिषे प्रवेश किया है स्वयं अपने स्वरूप से नहीं परन्तु ऐसा जानना चाहिये कि देवताओं ने अपना २ भोग्यरूप अन्न वा केवल अन्न के भोगने के अर्थ परमात्मा से प्रार्थना कर मनुष्य शरीररूप पिंडपाया तब तिस विभोग भोगनेकी सामग्री करणोंका अभावदेख भोग भोगार्थ अपने बिषे एक करणका स्वरूप धार तिससहित मुखादि स्थानों बिषे प्रवेश कियाहै॥] रूपही होके अपनी योनि (उत्पत्ति स्थान) मुखविषे प्रवेशकरता हुआ, तैसेही वायु प्राण (घ्राण) रूप होयके नासिकाबिषे प्रवेश करताहुआ, तैसेही सूर्य चक्षु होयके नेत्ररूप स्थानबिषे प्रवेश करताहुआ, तैसेही दिशा श्रोत्र होयके कर्णों बिषे प्रवेश करता हुआ, तैसेही ओषधि अरु बनस्पतियां रोमरूप होके त्वचा बिषे प्रवेश करतीहुई, तैसेही चन्द्रमा मनरूप होयके हृदयबिषे प्रवेश करताहुआ, तैसेही मृत्युअपान (गुदा) रूप होयके नाभि बिषे प्रवेश करताहुआ, तैसेही जल वीर्यरूप होयके शिश्न (उपस्थ) बिषे प्रवेश करताहुआ ४।८॥

हे सौम्य! "तमशनापिपासे अब्रूतामावाभ्यामभिप्रजानीहीति, सते अब्रवीदेतास्वेव वा देवतास्वाभजाम्येतासुभागिन्यौ करोमीति" (क्षुधा अरु तृषा तिसको कहतीहुई हमारे अर्थ चिंतनकरो, सो तिनके अर्थ कहताहुआ देवताबिषेही तुम दोनोंको

अथ तृतीयखंडः ॥

सईक्षतेमेनुलोकाश्च लोकपालाश्चान्नमेभ्यः सृजा इति १ । १० ॥

अनुग्रह करताहौं इनबिषे भागवालियां करताहौं) अर्थात् इस प्रकार देवताओं को स्थानबिषे प्राप्तहुये, स्थान रहितहुईं जो क्षुधा अरु तृषा सो दोनों तिस ईश्वर से प्रार्थना करतीहुईं कि । हे भगवन् । हमारे अर्थ स्थान को चिन्तन (निर्माण) करो, इसप्रकार जब । उन क्षुधा तृषाने । कहा, तब सो ईश्वर तिन क्षुधा अरु तृषा के अर्थ कहताहुआ कि जिसकरके तुमको भाव (धर्म) रूप होनेसे अरु चेतनावाली वस्तु के आश्रयरहित होनेसे भोक्तापना नहीं संभवे है, अतएव इन अध्यात्म (व्यष्टि देहगत) अरु अधिदैव (समष्टि देहगत) रूप अग्निआदिक देवताओं के बिषेही तुम दोनों को वृत्तिके विभाग से अनुग्रहकरताहौं । अरु इन देवताबिषे तुमको भागवाली करताहौं, अर्थात् जिस देवताका जो हवी आदिक भागहै तिस देवता के तिसही भागसे तुमको भागवालियां करताहौं । अरु जिस करके सृष्टिकी आदिविषे ईश्वर इसप्रकार करताहुआ "तस्माद्यस्यैकस्यैचदेवतायैहविर्गृह्यते भागिन्यावेवा स्यामशनायापिपासेभवतः" (ताते जिसी अरु किसी देवतार्थ हविग्रहणकरते हैं इसीविषे ये क्षुधा अरु तृषा दोनों भागवालियां ही होती हैं) अर्थात् ताते अबभी जिसी अरु किसी देवताके अर्थ चरु अरु पुरोडाशादिरूप हविग्रहण करते हैं, इसही देवता बिषे यह क्षुधा अरु तृषा दोनों भागवालियां । अर्थात् भागीदार वा हिस्सेदार । ही होती हैं ५ । ६ ॥

इति श्रीप्रथमाध्यायगत द्वितीयखंडभाषाभाष्यसमाप्तः ॥

अथ प्रथमाध्यायगततृतीयखण्डभाषाभाष्यप्रारभ्यते ॥

हे सौम्य ! [इसप्रकार भोग के साधनकी सृष्टि को कहके अब भोग्य की सृष्टि के कहने का आरंभ करते हैं] "सईक्षते मेनु लो-

सोऽपोऽभ्यतपत्। ताभ्योऽभितप्ताभ्योमूर्त्तिरजायत। यावैसामूर्त्तिरजाताऽन्नंवैतत् ॥ २ ॥ ११ ॥

काश्च लोकपालाश्चान्नमेभ्य सृजा इति" (सो ईक्षण करता हुआ यह प्रसिद्ध लोक अरु लोकपालके अर्थ अन्न को सृजो इस प्रकार) अर्थात् सो ईश्वर इसप्रकार ईक्षण करताहुआ, कैसे कि यह प्रसिद्धलोक अरु लोकपाल मैंने सृजे हैं, अरु सो क्षुधा अरु तृषाकरके योजना कियेहुये हैं, एतदर्थ इन की स्थिति अन्नबिना होगीनहीं, ताते इन लोकपालनके अर्थ अन्नको सृजो, इसप्रकार ईक्षण (विचार) करताहुआ, ऐसेही लोकबिषे ईश्वरोंका (अर्थात् सामर्थ्यवालोंका) अपने सेवक किङ्करादिकों में अनुग्रहबिषे अरु निग्रह (दण्ड) बिषे स्वतन्त्रपना देखते हैं। तैसे महेश्वरको भी सर्व का ईश्वर होनेसे सर्वकेप्रति निग्रह अरु अनुग्रह करने के विषय में स्वतन्त्रपनाही है १ ॥ १० ॥

हे सौम्य! "सोऽपोऽभ्यतपत्, ताभ्योऽभितप्ताभ्योमूर्त्तिरजायत यावैसामूर्त्तिरजायताऽन्नंवैतत्" (सो जलों के अर्थही तपकोकरता हुआ, तिस तपको प्राप्तहुये मूर्त्ति उत्पन्नहुई, जो प्रसिद्ध सोमूर्त्ति उत्पन्नहुई सो निश्चय करके अन्न है) अर्थात् सो ईश्वर अन्नको सृजने को इच्छाकरता हुआ तिन पूर्वोक्त जल उपलक्षणसे जलादि पंचभूतन के अर्थही उद्देशकरके तप [यहां यह अर्थ है, इन भूतों के अर्थ मनुष्यादिकन के अन्नरूप तंदुल यवादि उत्पन्नहोहु, अरु मार्जारि (बिल्ली) आदिकनके अन्नरूप मूषकादि उत्पन्नहोहु। इसप्रकार अवलोकनरूप संकल्पको करताहुआ] 'संकल्प, को करताहुआ। तिन तप (ईश्वरके संकल्प) को प्राप्तहुये उपादान रूप जलों से घन (कठिन) रूप अरु शरीर धारणके समर्थ चर अचररूप मूर्त्ति उत्पन्नहुई, जो प्रसिद्ध सो मूर्त्ति उत्पन्नहुई सो निश्चयकरके अन्नहै अर्थात् जो उत्पन्न हुआ अन्नहै सो मूर्त्तिरूप है। अरु जो सो मूर्त्ति उत्पन्नहुई सो यह अन्नहै ॥ २ ॥ ११ ॥

तदेतदभिसृष्टंनदत । पराङ्त्यजिघांसत । तद्वाचा जिघृक्षत्तन्नाशक्नोद्वाचाग्रहीतुम् । सयद्धैनद्वाचाऽग्रहैष्यद भिव्याहृत्य हैवान्नमत्रप्स्यत् ३ । १२ ॥

तत्प्राणेनाजिघृक्षत् तन्नाशक्नोत्प्राणेन ग्रहीतुम् । सय द्धैनत्प्राणेनाग्रहैष्यदभिप्राण्यहैवान्नमत्रप्स्यत् ४ । १३ ॥

हे सौम्य! "तदेतदभिसृष्टंनदत" (सो यह छोड़ाहुआ) अर्थात् सो यह अन्न लोकपालों के सन्मुख छोड़ाहुआ जैसे मूषक (चूहा) आदिक मार्जार (बिल्ली) आदिकों के दृष्टिके सम्मुख छोड़ाहुआ यह मेरा भक्षणकरनेवाला मृत्यु अन्नाद (भोक्ता)है ऐसे मानिके पीछे जाताहै, तैसे "पराङ्त्यजिघांसत्" (पराङ्मुख हुआ उल्लंघनकरने को इच्छताहुआ) अर्थात् पराङ्मुखहुआ अप ने भोक्ताको उल्लंघन करनेको इच्छाकरताहुआ, अर्थात् अपनी पालना (रक्षा) करनेको प्रारंभकरताहुआ, तिस अन्न के अभिप्राय को मानिके सो लोक अरु लोकपालों के संघातोंसे कार्य्य कारण रूप पिंड (विराट्) प्रथम उत्पन्नहुआ होनेसे अन्यों को अन्नादवत् तिस अन्नको पचनक्रियारूप "तद्वाचाजिघृक्षत्तन्नाशक्नोद्वाचाग्रही तुम्" (तिसको वाणी से ग्रहण को इच्छता हुआ, तिस को वाणी से ग्रहण करने को समर्थ न हुआ) अर्थात् अन्न को पचन क्रियारूप वाणी से ग्रहण (भक्षण) करने को इच्छता हुआ, परन्तु तिसको वाणी से ग्रहण करने को समर्थ न हुआ "स यद्धै नद्वाचाऽग्रहैष्यदभिव्याहृत्य हैवान्नमत्रप्स्यत" (सो जिसकरके इसको वाणी से ग्रहण करताहुआ ताते भी अन्नको कथनकरके ही तृप्त होताहुआ) अर्थात् सो प्रथम उत्पन्नहुए शरीरवाला विराट्, जिसकरके इसको वाणी से ग्रहण करताहुआ, ताते सर्व लोक भी तिसका कार्य होनेसे अन्नको वाचक शब्द से कथन करकेही तृप्त होताहुआ ३ । १२ ॥

हे सौम्य! "तत्प्राणेनाजिघृक्षत् तन्नाशक्नोत्प्राणेनग्रहीतुम्"

तच्चक्षुषाऽजिघृक्षत् तन्नाशक्नोच्चक्षुषाग्रहीतुम्। सयद्धैनच्चक्षुषाऽग्रहैष्यद्दृष्ट्वा हैवान्नमत्रप्स्यत् ५। १४॥

तच्छ्रोत्रेणाजिघृक्षत् तन्नाशक्नोच्छ्रोत्रेण ग्रहीतुम्। स यद्धैनच्छ्रोत्रेणाग्रहैष्यच्छ्रुत्वा हैवान्नमत्रप्स्यत् ६। १५॥

(तिसको प्राणसे ग्रहण करने की इच्छा करता हुआ, तिसको प्राण से ग्रहण करने को समर्थ न हुआ) अर्थात् तिस (अन्न) का प्राण कहिये घ्राणसों ग्रहण करने की इच्छा करता हुआ, परन्तु तिस (अन्न) को प्राण (घ्राण) से ग्रहण करने को समर्थ न हुआ "(स यद्धैनत्प्राणेनाग्रहैष्यदभिप्राण्यहैवान्नमत्रप्स्यत्)" (सो इसको प्राणसे ग्रहण करता हुआ ताते भी इस अन्नको सूँघिके तृप्त होताहुआ) अर्थात् जिस करके सो इसको प्राण (घ्राण) से ग्रहण करता हुआ, ताते सर्व लोक भी इस अन्नको सूँघिकेही तृप्त होताहुआ ४। १३॥

हे सौम्य! "(तच्चक्षुषाऽजिघृक्षत् तन्नाशक्नोच्चक्षुषाग्रहीतुम्)" (तिसको चक्षु से ग्रहण करने की इच्छा करता हुआ, तिसको चक्षु से ग्रहण करने को समर्थ न हुआ) अर्थात् (सो विराट् पुरुष) तिस (अन्न) को चक्षु से ग्रहण करने को इच्छता हुआ, (परन्तु) तिस (अन्न) को चक्षु से ग्रहण करने के विषय में समर्थ न हुआ, "(स यद्धैनच्चक्षुषाऽग्रहैष्यत् दृष्ट्वा हैवान्नमत्रप्स्यत्)" (जाते सो इसको चक्षु से ग्रहण करताहुआ अन्नको देखकेही तृप्त होता हुआ) अर्थात् जिस करके सो (विराट् पुरुष) तिस (अन्न) को चक्षु (दृष्टि) से ग्रहण करता हुआ, तिस करके सर्व लोक भी इस अन्नको देखकेही तृप्त होताहुआ ५। १४॥

हे सौम्य! "(तच्छ्रोत्रेणाजिघृक्षत् तन्नाशक्नोच्छ्रोत्रेणग्रहीतुम्)" (तिसको श्रोत्र से ग्रहण करने को इच्छताहुआ, तिसको श्रोत्र से ग्रहण करने को समर्थ न हुआ) अर्थात् तिस (अन्न) को श्रोत्र सें ग्रहण करने को इच्छताहुआ परन्तु श्रोत्र से तिस (अन्न)

तत्त्वचाऽजिघृक्षत् तन्नाशक्नोत्त्वचाग्रहीतुम् । सय-
द्धैनत्त्वचाऽग्रहैष्यत् स्पृष्ट्वाहैवान्नमत्रप्स्यत् ७ । १६ ॥
तन्मनसाऽजिघृक्षत् तन्नाशक्नोन्मनसाग्रहीतुम् । स
यद्धैनन्मनसाऽग्रहैष्यद्ध्यात्वाहैवान्नमत्रप्स्यत् ८ । १७ ॥

को ग्रहण बिषे समर्थ न हुआ, " सयद्धैनच्छ्रोत्रेणाग्रहैष्यच्छ्रुत्वा हैवान्नमत्रप्स्यत् " (सो (विराट्) इसको श्रोत्र से ग्रहण करता हुआ, ताते भी अन्नको श्रवण करकेही तृप्त होताहुआ) अर्थात् सो इस (अन्नको) श्रोत्र से ग्रहण करता हुआ, ताते (उसका कार्य) सर्व लोकभी अन्नको श्रवण करके तृप्तहोताहुआ ६ । १५ ॥

हे सौम्य ! " तत्त्वचाऽजिघृक्षत् तन्नाशक्नोत् त्वचाग्रहीतुम् " (तिसको त्वचा से ग्रहण करने को इच्छताहुआ, तिसको त्वचा से ग्रहण करनेको समर्थ न हुआ " स यद्धैनत् त्वचाऽग्रहैष्यत् स्पृष्ट्वा हैवान्नमत्रप्स्यत् " (सो इसको त्वचा से ग्रहणकरताहुआ ताते सर्व अन्नको स्पर्श करके तृप्त होतेहुए) अर्थात् सो (विराट् पुरुष) इस (अन्न) को त्वचा से ग्रहण करताहुआ, ताते सर्वलोक भी इस (अन्न) को स्पर्श करके तृप्त होतेहुये ७ । १६ ॥

हे सौम्य ! " तन्मनसाऽजिघृक्षत् तन्नाशक्नोन्मनसाग्रहीतुम् " (तिसको मन से ग्रहण करने को इच्छताहुआ, तिसको मनसे ग्रहण करने में समर्थ न हुआ) अर्थात् तिस (अन्न) को मनसे ग्रहण करने को इच्छताहुआ परन्तु तिसको मनसे ग्रहण करने में समर्थ न हुआ, " स यद्धैनन्मनसाऽग्रहैष्यद्ध्यात्वा हैवान्न-मत्रप्स्यत् " (सो इसको मनसे ग्रहण करताहुआ ताते अन्नको चिन्तन करकेही तृप्त होतेहुये) अर्थात् सो (विराट्) इस (अन्न को) मनसे ग्रहण करताहुआ, ताते सर्वलोक भी अन्नको ध्यान करके तृप्त होतेहुये ८ । १७ ॥

हे सौम्य ! " तच्छिश्नेनाजिघृक्षत् तन्नाशक्नोच्छिश्नेनग्रही-तुम् " (तिस (अन्नको) शिश्न से ग्रहण करने को इच्छताहुआ,

तच्छिश्नेन।।जिघृक्षत् तन्नाशक्नोच्छिश्नेनग्रहीतुम्। स यद्धैनच्छिश्नेनाग्रहैष्यद्विसृज्यहैवान्नमत्रप्स्यत् ९। १८

तदपानेना।जिघृक्षत् तदावयत्। सएषोऽन्नस्यग्रहोय द्वायुरन्नायुर्वा एष यद्वायुः १०। १९॥

स ईक्षत कथं त्विदं मदृते स्यादिति। स ईक्षत कत रेण प्रपद्या इति। स ईक्षत यदि वाचाऽभिव्याहृतं। यदि प्राणेनाभिप्राणितं। यदि चक्षुषा दृष्टं। यदि श्रोत्रेण श्रुतं। यदि त्वचा स्पृष्टं। यदि मनसा ध्यातंयद्यपानेनाभ्य-पानितं। यदि शिश्नेन विसृष्टमथ कोहमिति ११। २०॥

(परन्तु) तिसको शिश्नसे ग्रहण करने में समर्थ न हुआ, "स यद्धैनच्छिश्नेनाग्रहैष्यद्विसृज्यहैवान्नमत्रप्स्यत्" (जाते सो इसको शिश्नसे ग्रहण करताहुआ, ताते सर्व लोक भी इस अन्नको त्यागकेही तृप्त होताहुआ ९। १८॥

हे सौम्य! "तदपानेनाजिघृक्षत् तदावयत्" (तिसको अपान से ग्रहण करनेको इच्छताहुआ, तब भक्षण करताहुआ) अर्थात् पश्चात् तिस (अन्न)को अपानवायु (मुखछिद्र) से ग्रहण करनेको इच्छा करताहुआ, तब तिस अन्नको भक्षण करताहुआ, "सएषोऽन्नस्यग्रहो यद्वायुरन्नायुर्वा एष यद्वायुः" (सो यह अन्न का ग्राहकहै जो वायु, अन्नसे जीवनवाला प्रसिद्ध है सो यह जो वायु है १०। १९॥

हे सौम्य! "सईक्षत" (सो ईक्षणको करताहुआ) अर्थात् सो [इसप्रकार भोगके अधिकरणरूप लोकों की, अरु भोगके आ-यतन समष्टि व्यष्टि शरीरों की, अरु भोगके साधन वागादिकों की, अरु समष्टि शरीरविषे लोकपालों करिके अरु व्यष्टि शरीर बिषे करणों के अधिष्ठाता करके स्थितहुये देवताओं की, अरु भोगविषे प्रेरक क्षुधातृषाकी, अरु तिसके किये करणों बिषे स्थित

शब्दादि विषयोंकेग्रहणरूपभोगकीभी, अरुअन्नरूपवृत्तिवाले प्राण विषे स्थित अन्नपानके ग्रहणरूप भोगकी आत्माके संसारीपने की सिद्ध्यर्थ सृष्टिको कहके अब संसारियोंके भोक्ताको देखावने अर्थ सृष्टिकर्त्ता ईश्वरके विचरांशके देखावने को " सईक्षत " सो ईक्षणको करताहुआ, । इस वाक्यका व्याख्यान करते हैं] इस प्रकारके पुर अरु पुरके निवासी जन अरु तिनके पालक राज-भृत्यों की स्थिति के तुल्य अन्नरूप निमित्तवाली लोक अरु लो-कपालों के संघातकी स्थितिको करके पुर के स्वामीवत् ईक्षण (अवलोकन) को कर्त्ताहुआ, क्योंकि कार्य कारणका संघातरूप अग्रिमकहनेकाकार्य है सो परके [इदं शब्दार्थका "परार्थेसादिति" यह विशेषण हेतु गर्भित है । इस संघातको परके अर्थ होने से, इस हेतुरूप गर्भवाला यह विशेषणहै । परके अर्थहोनेवाले पदार्थों की स्थिति वा चेष्टा मुझविना कैसेहोवेगी, इसही अर्थके "कथं" कैसे, । इस अर्थकरके सूचनकिये व्यतिरेकको कहतेहैं] अर्थहुआ स्वामी विना पुरवत् "(कथं त्विदं मदृते स्यादिति । सईक्षत कत-रेणप्रपद्याइति, सईक्षत यदि वाचाऽभिव्याहृतं, यदि प्राणेनाभि-प्राणितं । यदि चक्षुषादृष्टं, यदि श्रोत्रेणश्रुतं, यदि त्वचा स्पृष्टं, यदि मनसाध्यातं, यद्यपानेनाभ्यपानितं । यदि शिश्नेन विसृष्ट मथ कोऽहमिति" (मुझ विना निश्चयकरके किसप्रकार से हो-वेगा, जब वाणीसे कथन कियाहोवे, जब प्राण (घ्राण) से सूंघा होवे जब चक्षुसे देखाहोवे, जब श्रोत्रसे श्रवण कियाहोवे, जब त्वचासे स्पर्शकियाहोवे, जब मनसे ध्यानकियाहोवे, जब अपान से भक्षणकियाहोवे, जब शिश्नसे त्यागकियाहोवे, तब मैं कौनहौं, इसप्रकार ईक्षण करताहुआ) अर्थात् (जैसे पुरके स्वामी राजा विना प्रजाका व्यापार सिद्धहोवेनहीं, तैसे इस शरीररूप पुरके स्वामी) मुझविना निश्चयकरके किसप्रकार होवेगा । अरु पुनः [इसप्रकार वाणीके व्यवहारादिक कार्यकी सिद्धिकेअर्थ मुझको प्रवेशकरना योग्य है, इसप्रकार कहके अब आत्मस्वरूप के बो-

थार्थ मुझको प्रवेशकरना योग्यहै, यह कहनेके अर्थ "स ईक्षत" सो ईक्षणकरताहुआ, । "यदि वाचाभिव्याहृतं" जब वाणी से कथनकिया, । इत्यादिसेले " कोऽहमिति " अब, मैं कौनहौं, । यहां पर्यन्त जो वाक्यहै, तिसको तिस [परमेश्वर] के प्रवेश के प्रयोजन के कथनरूप होनेवाला करके " कथं त्विदं मदृते स्यादिति " यह मुझ विना कैसे होवेगा, । इसवाक्यके तुल्य होनेसे " स ईक्षत " सो ईक्षणकरताहुआ, । " कतरेण प्रपद्या " किस मार्गसेप्रवेशकरों, । इसवाक्यसे अन्तरायवाले वाक्यकोभी यहांही ल्यायके व्याख्यानकरे है । इसवाक्यका यहअर्थहै कि, संघातरूप वागादिक कार्यका परोपकार रूपवदनादिक क्रिया के कर्त्तापने रूप जो परके अर्थहोनाहै सो उपकार के भागी परके अर्थी विना जब होवे तब] जब वाणीसे कहा, घ्राणसे सूंघा, चक्षु से देखा, श्रोत्रसे सुना, त्वचासे स्पर्शकिया, मनसे ध्यानकिया, अपान से भक्षणकिया ॥ [हेसौम्य! यहां अपानवायुकरके भक्षणकिया ऐसा कहाहै अरु यहनिकटही कहआयेहैं कि मृत्यु अपान कहिये गुदा रूप से नाभिबिषे प्रवेश करताहुआ, अन्य बहुत से स्थानों बिषे अपानवायुको मल मूत्रके त्यागरूप क्रियाका करता अधोगामी कहाहै, । " पायूपस्थेऽपानं " । यह प्रश्नोपनिषद्का प्रमाण है कि पायु (गुदा) अरु उपस्थ (शिश्न) इन दोनों इन्द्रियों में स्थितहोयके अपाननामवाला वायु मल मूत्रका त्यागरूप क्रिया करेहै, । अरु यहां अपानवायुकरके भक्षण किया, ऐसा कहा है, ताते परस्पर विरुद्ध प्रतीत होवेहै, अतएव यहां ऐसा विचार है कि जैसे गुदस्थ अपान अधोगामीहै तैसेही मुख नासिकाके मार्ग से बाह्यरूप ऊर्ध्वको जानेवाला प्राणहै सो जब बाह्यरूप ऊर्ध्व से लौटके अन्तर अधोको आवताहै तब उसकीभी अपानसंज्ञाहोती है क्योंकि अन्तर अरु अधोगमनकी अधोगमन में एकताहै ताते, अतएव यहां मुख नासिका के मार्गसे अन्तर आवनेवाला प्राण अपानसंज्ञक जानना अरु सोई मुखमें पाये अन्न जलादिकों को

कण्ठके नीचे उतार उदर में प्रासकरता है, ताते मुखके मार्गसे अन्तर आवनेवाले " यद्यपानेनाभ्यपानितं " जब अपानवायु करके भक्षण कियाहोवेहै, इसप्रकार जानना । ॥ शिश्न से त्याग किया, इसप्रकारहोवे, तवमें कौनहों । इसप्रकार ईक्षण (विचार) करताहुआ, इस [उक्त वाक्यके अर्थको स्पष्टकरतेहैं] वाक्यका यह अर्थहै कि केवलही भोक्तारहित वाणीआदिकों से उच्चारणादिक जो है, सो व्यर्थ होने से किसीप्रकार भी होवेनहीं क्योंकि सर्व प्रवृत्तियों का प्रयोजनके अर्थ होनाहै ताते । अरु जैसे पुरके निवासी अरु बन्दीजनादिकों करके योजना किया जो बलिदान (कर) अरु स्तुतिआदिक सो स्वामीके अर्थ होतेहैं, स्वामीविना व्यर्थहै,तद्वत् । अतएव पुरके अधिष्ठाता राजावत्, संघातसे अन्य मुझ स्वामी अधिष्ठाता अरु कृताकृतके फलके साक्षीरूप भोक्ता करके तहां । शरीरादि संघातविषे प्रवेशकरना योग्यहै । अरु जब यह संघातरूप कार्यका जो दूसरे के अर्थ होना है सो स्वामी के विना पुर अरु पुरवासियोंवत् पररूप अर्थी चेतन विना होवे, तब मैं किस स्वरूपवालाहौं, वा किसका ईश (स्वामी) हौं अर्थात् जब मैं कार्य कारणके संघातविषे प्रवेश करके अधिकारी पुरुषों के कृताकृत के देखने को राजावत् वागादिकों के उच्चारणादिक फलको न जानों तब कोई भी पुरुष मुझको यहआत्मा अरु यह इस रूपवाला है इसप्रकार न विचारेगा । अरु विपर्यय के । प्रवेश करके उच्चारणादिक के अनुभव के । हुये तो जो [ज्ञानरूपताको प्रतिपादन करते हैं । यहां यह जो वागादिकों के वदनादिक क्रियाको जानता है सो ज्ञानरूप है, इसप्रकार जानने को योग्य होवेगा, यह अन्वय है । अरु जाननेवाले का ज्ञानरूपपना कैसे है,इसप्रकारकहनेको योग्यनहीं,क्योंकिज्ञाताकोअचेतनरूपताके होनेसे तिसको अन्य ज्ञानकी विषयता कहनी होवेगी । अर्थात् जब ज्ञाता अचेतन हुआ तब , ज्ञाता अन्य ज्ञानकरके जानाजाता है, इसप्रकार कहना होवेगा । । अरु तिस ज्ञानविषे

जब ज्ञाताही कर्त्ता है, तब एकही ज्ञाताबिषे ज्ञानका कर्त्तापना अरु ज्ञानका विषयपना यह विरोध प्राप्त होवेगा, । अरु जब अन्य ज्ञाता कर्त्ता है तब तिसका भी अन्यज्ञाता होवेगा, ताते अनवस्था दोष प्राप्त होवेगा । इसप्रकार ज्ञाताकी ज्ञानरूपता सिद्ध होतीहै । इसही से अन्यश्रुतिबिषे "यो वेदेदं जिघ्राणीति" जो जानता है इसको मैं सूंघताहौं सो आत्मा है, इसप्रकार घ्राता घ्रेय अरु घ्राणरूप त्रिपुटी के ज्ञानको आत्मरूपता कही है । यह भावहै] यह वागादिकों के उच्चारणादिकों को जानता है सो सत् है, अरु सो संवेदन (ज्ञान) रूपहै, इसप्रकार मैं जाननेयोग्य होऊँगा । अरु जिसके अर्थ यह संघातरूप वागादिकोंका उच्चारणादिकहै, सो वागादिकन से अन्य अरु अमिलित है, इसप्रकार जानने को योग्य है । [संघातरूप हुये पदार्थों के संघातसे भिन्नपरके अर्थ होनेविषे दृष्टान्त कहते हैं।यहां यहअनुमान कथनकियाहोताहै कि वागादिकों का संभाषणादिक जो है सो अपने से अमिलित अन्यके अर्थ होनेको योग्यहै । अर्थात् वागादिकों का जो वक्तृत्वादि व्यापार है सो वागादिकों के अर्थ न होयके वागादिकों से पृथक् किसी अन्यके अर्थ है । क्योंकि संघातरूप हैं ताते, भित्ति (दिवार) अरु गृहादिकोंवत्] जैसे गृहविषे मिलित हुये स्तंभ भित्तिकपाटआदिकोंका अपने अवयवनसे अमिलितहुये अन्यके अर्थही होनाहै तद्वत् । अर्थात् गृहमें ईंट पाषाण स्तंभ छज्जे टोड़े गोखे तिखालादिक जो होते हैं सो अपने २ अर्थ वा अपने अवयवों में एक दूसरे के अर्थ नहीं, अर्थात् स्तंभका होना स्तंभ के अर्थ वा भित्तिके अर्थ नहीं क्योंकि वो स्तंभ भित्तिआदिक जड़ होनेसे प्रयोजन रहित है, ताते उनका होना उनसे भिन्न उनका जाननेवाला स्वामी अन्यही है, तैसेही शरीर प्राण मन बुद्धि इन्द्रियादिक संघात जो काष्ठभारवत् जड़ हैं तिनका जो द्रष्टृत्व श्रोतृत्व वक्तृत्वादि व्यापारहैं सो स्वस्वके अर्थ किंवा एककादूसरे के अर्थ नहीं क्योंकि यह करणरूप होनेसे ज्ञानशून्य परतन्त्र है

स एतमेवसीमानंविदार्य्यैतया द्वारा प्रापद्यत । सैषा विद्वतिनामद्वास्तदेतन्नान्दनं । तस्य त्रय आवस्थास्त्रयः स्वप्नाअयमावसथोऽयमावसथोऽयमावसथ १२।२१॥

ताते इनका सर्व व्यापार इनसे अमिश्रित अन्य किसी ज्ञाते चैतन्यके अर्थ है ।। इसप्रकार सो ईक्षण (विचार) करताहुआ । इसरीति से ईक्षण करके "। सईक्षत कतरेण प्रपद्या " (सो ईक्षण करताहुआ किससे प्राप्तहोवो) अर्थात् । उक्तप्रकार वि- चार के सो परमात्मा पुनः । ईक्षण (विचार) करताहुआ कि, [अब " सईक्षत " सो ईक्षण करताहुआ कि " कतरेण प्रपद्या" किस मार्ग से प्रवेशकरों, इस वाक्य का व्याख्यान करते हैं। यहां यह अर्थ है कि, जिस करके प्रवेशकी, वागादिकों के व्यव- हारकी सिद्धि अरु मेरे स्वरूप का बोध, इन दोनों प्रयोजनकी सिद्धिके अर्थ कर्तव्य है याते] किस द्वारसे इस संघात विषे प्राप्तहो अर्थात् इस संघात विषे प्रवेशके मार्गपादका अग्रभाग ।वा नीचेकाभाग। अरु मस्तकहै, इनदोनों विषे किसमार्गसे इस कार्य कारणात्मक संघातरूप पुरविषे प्रवेशकरों " इति, सईक्षत । (इसप्रकार सो ईक्षणकरताहुआ) अर्थात् इसप्रकारसो ।परमात्मा ईक्षण ।विचार। करताहुआ, इसरीतिसे ईक्षण करके [किंकरके प्रवेशके मार्ग से स्वामी का प्रवेश अनुचित है, एतदर्थ इसही मार्ग से प्रवेशकरों इसप्रकार निश्चय करताहुआ, ऐसाकहते हैं] प्रथम मेरे सर्व अर्थ विषे अधिकारी मेरे भृत्यरूप प्राणके प्रवेश के मार्गरूप दोनों पादों के अग्रनसे नीचे नहीं प्राप्तहोऊँगा, किन्तु परिशेषसे इस पिंड (शरीर) के मस्तकको विदीर्ण करके । इसविषे । प्राप्तहोऊँगा । इसप्रकार निश्चयकरके ११ । २०॥

हे सौम्य! "स एतमेव सीमानं विदार्य्यैतया द्वारा प्रापद्यत" (सो इसही सीमाको विदीर्णकरके तिसद्वारा प्रवेशकरताहुआ) अर्थात् लोकवत् ईक्षणकर्त्ता जो स्रष्टा ईश्वरहै, सो यह जो केश

के विभागपर्यंत मस्तककी मध्यसीमाहै।(अर्थात् दक्षिणकर्ण के ऊपरसेलेके वामकर्णके ऊपरपर्यन्त मस्तकपर आड़ीरेखा करिये अरु नासिकासेलेके पीछे के मेरुदंडपर्यन्त खड़ी रेखाकरिये तब जहां दोनों रेखामिलें व खड़ीरेखा आड़ीरेखाको काटे तिस मस्तक की मध्य सीमाको) विदीर्णकरके अर्थात् मस्तककेमध्य छिद्रकरके तिस द्वारसे (मार्गसे) इस कार्यकारणके संघातरूप लोक (वा पुर) विषे प्रवेश करताहुआ॥ (अर्थात् बालकों के मस्तकके मध्य में अतिमृदु त्वचासे आच्छादित छिद्रहोताहै अरु सो बालक के मस्तकपर स्पर्शकरनेसे प्रतीतहोताहै तिसछिद्रको निर्माणकर, अर्थात् मस्तकके तिस स्थानको विदीर्ण (छिद्र) कर परमात्मा ने प्रवेशकियाहै अरु वह छिद्र परमात्माके प्रवेशका द्वारहोनेसे,ब्रह्मरंध्र इसनामसेप्रख्यातहै)॥ "सैषाविदृतिर्नामद्वास्तदेतन्नान्दनं" (सो यह विदृतिनामवाला प्रसिद्धद्वारहै सो यह नान्दनद्वारहै) अर्थात् सो यह [ननु,पुरुषविषे नव प्राण(द्वार) हैं,तहां सप्त मस्तक के अरु दोनीचेके (इसप्रकार नव) हैं "नवद्वारे पुरेदेही" नवद्वार वालेपुरविषे देही,। इत्यादि प्रमाणवाक्यकरके शरीररूपपुरके नव द्वारप्रसिद्धहैं, परन्तु मस्तकविषे अन्यद्वार नहीं, यह आशंकाकरके प्रत्यक्षसे अरु "तयोर्ध्वमायन्नमृतत्वमेतीति" तिस (सुषुम्णानाम नाड़ी) से ऊर्ध्वको जाताहुआ अमरण भावको पावता है, । इस श्रुतिवाक्यसे, तिस मस्तकगत अन्य द्वारकी प्रसिद्धि से तिसका निषेध बनेनहीं, इसप्रकार कहनेको "सो यह" इस रीतिका वाक्यहै तिसका व्याख्यान करते हैं।] द्वार,मस्तकका छिद्र, मस्तक बिषे तैलादिकको धारणकालमें तिसके रसआदिकों के जानने से प्रसिद्धहै। सो यह विदीर्णहुआ होनेसे विदृतिनामवाला प्रसिद्ध द्वार है । अरु अन्य श्रोत्रादिद्वार तो राजा के किंकरादिस्थानीय देवताओं के प्रवेशके साधारण मार्गरूप होनेसे समृद्धिवाल (आनन्दकेहेतु) नहीं, यह द्वार तो केवल परमेश्वरकाही है, तातें सो यह द्वार नान्दन (आनन्दका हेतु) है। अरु जिस द्वारसे जायकेपर-

ब्रह्मको पावताहै तिस द्वारको नान्दन कहतेहैं। [इसप्रकार ईश्वरके प्रवेशको कहके, अब तिसके पूर्वोक्त कार्य कारणरूप संघातमय उपाधिकेकिये संसारको कहते हैं] "तस्य त्रयआवसथास्त्रयः स्वप्ना अयमावसथोऽयमावसथोऽयमावसथ इति "। (तिस के तीन स्थानहैं, स्वप्नहै, यह स्थानहै, यह स्थान है, यह स्थान है; अर्थात् तिसही सृजके अपने पुरकेअर्थ राजावत् जीवरूपपरमेश्वरके तीनस्थानहैं। तहां जाग्रत्कालविषे दक्षिणचक्षु (चक्षुरूप गोलक) रूप स्थानहै। स्वप्नकालविषे अन्तरका मन (मनकाआश्रय कंठ) स्थानहै। अरु सुषुप्तिकालविषे यह हृदयाकाश (हृदय करके अविच्छिन्न भूताकाश) स्थानहै। अथवा यह अग्रिमकहने के तीनस्थान, (पिताके शरीर, माताके गर्भके आशय (अर्थात् गर्भाशय, गर्भस्थान) अरु अपना शरीर, यह तीनरूप स्थान है। इनमें तीन जाग्रत् स्वप्न सुषुप्ति नामवाली अवस्था स्वप्न (भ्रमरूप) है ननु जाग्रत् अवस्था प्रबोधरूप होने से स्वप्न नहीं है, सो ऐसे नहीं, किन्तु सो स्वप्नही है। कैसे, [अविवेकियोंको तैसे प्रसिद्धके अभावहुयेभी विवेकियोंको तिन (स्वप्नादि) के लक्षणके ज्ञातवाले होनेसे, तैसे (स्वप्नवत्) प्रसिद्ध है, यह कहते हैं। यहां यह अर्थ है कि वस्तुके स्वरूपके तिरोधान से असत् वस्तुकी जो प्रतीति, सो स्वप्न कहते हैं, यह स्वप्न का लक्षण है। अरु जाग्रत् भी तिस प्रकार का ही है, क्योंकि ब्रह्म स्वरूपके तिरोधानहुये अरु अविद्यमान जगत् की प्रतीतिके हुये (जाग्रत्भी स्वप्न है)] तहां परमार्थ स्वरूपके प्रबोधके अभाव से अरु विवेकी पुरुषों करके स्वप्नवत् इसकी असद्रूपताके देखेहुये। यहही दक्षिण चक्षुरूप स्थान प्रथमहै। यह स्थान भीतरका मनरूप द्वितीय है, अरु यह हृदयाकाशरूप स्थान तीसरा है,। यह "अयमावसथः" यह स्थान ऐसा जो उच्चारण है सो उक्त अर्थकाही अनुवाद है १२। २१॥

स जातो भूतान्यभिवैक्षत । किमिहान्यं वावदिष दिति । स एतमेव पुरुषं ब्रह्म ततमपश्यदिदमदर्श मिति १३।२२॥

हे सौम्य, [ननु, गृहविशेषके वाची ,आवसथ, शब्दका नेत्रादिकों बिषे व्यवहार कैसे बनेगा, यह आशङ्का करके गृहवत इन नेत्रादिकों बिषे स्थित पुरुषको दीर्घनिद्रा के देखने से अरु तिन नेत्रादिकों बिषे गृहमें सुखसे सोयेहुयेवत्, सोये पुरुष को तत्काल जागरण के देखने से गौणी वृत्ति करके नेत्रादिकन के आवसथ (गृह) पने को कहे हैं] जिसकरके यह आत्मा उन स्थानों बिषे क्रमकरके आत्मभाव से वर्त्तमान होयके स्वाभाविक अविद्यासे दीर्घकाल पर्यन्त गाढ़ निद्रा को पायाहुआ प्रबोधको प्राप्त होता नहीं, अरु वारंवार मरणके अनुभवसे अनेकशत सहस्र अनर्थोंकी प्राप्तिसे जन्यदुःखोंको अनुभव करे है, एतदर्थयह चक्षुरादिकों को स्थान (गृह) करके कहतेहैं॥ [ननु, जागरणादिक जो है सो कार्य कारणके सङ्घातरूप भूतों के कार्यका धर्म है, आत्माका नहीं, ताते भिन्न आत्माको भी तिसबिषे तादात्म्य अभिमानसे तिस धर्मकरके युक्तपना है, इसप्रकार कहने को " स जातः " सो होताहुआ, यह वाक्यहै, तिसका व्याख्यान करते हैं] " स जातो भूतान्यभिवैक्षत " (सो प्रकटहुआ भूतोंकोही जानताहुआ) अर्थात् सो परमात्मा प्रकटहुआही भूतों को "अहं मनुष्यः, अहं काणः, अहं सुखी " मैं मनुष्य हौं, मैं कानाहौं, मैं सुखी हौं, । इत्यादि । अनेक । प्रकारसे । अनात्मसङ्घातबिषे । तादात्म्य करके स्पष्ट जानताहुआ, अरु । मानताहुआ, अरु कहता हुआ, । " किमिहान्यं वावदिष्यदिति " (इसबिषे अन्यको क्या कहताहुआ) अर्थात् इस शरीरबिषे भिन्न आत्माको क्या कहता हुआ, नहीं कहताहुआ, अरु नहीं जानताहुआ। अरु जिसकरके ऐसे हैं । अर्थात् अपनेआप आत्माको नहीं जानता कहता । तिसही

करके भूतों को । आत्मा करके । स्पष्ट जानताहुआ । अथवा सो प्रकटहुआ भूतोंको चिन्तन करनेलगा, अर्थात् । भूतों को विचारताहुआ । कि क्या इनकी स्वरूप से सत्ता है वा नहीं । अरु विचारकरके किस अन्य (आत्मासे भिन्न) सत्तावालेको कहौ ॥ किसीको भी आत्मासे भिन्न । सत्तावाला । कहनेको समर्थ नहीं हौं, इसप्रकार निश्चय करताहुआ ॥ इसप्रकारके पदार्थ के शोधनवाले पुरुषको वाक्यार्थ का ज्ञान कहते हैं "। स एतमेव पुरुषं ब्रह्म ततमपश्यदिदमदर्शमिति "। (सो इसही पुरुषको परिपूर्ण ब्रह्मरूप देखताहुआ, इसको देखताहौं ऐसे,) अर्थात् सो कदाचित् परमदयालु आचार्य करके आत्मज्ञान के प्रबोधके कारक । महावाक्यार्थरूप । शब्दों को करनेवाली जे वेदान्त शास्त्ररूप । अलौकिक । महाभेरि तिसको । शिष्यके । कर्णमूलविषे । श्रोत्रके छिद्रपर । ताड़नकिये (बजायेहुये) सो इसही सृष्टि आदिकोंके कर्त्तापने करके प्रसङ्गविषे प्राप्तहुये शरीररूप पुरविषे रहनेवाले आत्मारूप पुरुषको आकाशवत् परिपूर्ण ब्रह्मरूपसे देखताहुआ । कैसे कि अहो इस परब्रह्मरूप मुझ स्वस्वरूप को देखताहौं । । अर्थात् "। अहं ब्रह्मास्मि मात्र से साक्षात् यथार्थ अनुभवकर्त्ता हौ यह महान् आश्चर्य है ।। ऐसे । अरु जिसकरके "। इदं "। यह, इस शब्दका वाच्य जो साक्षात् अपरोक्ष आवान्तर ब्रह्म है । अर्थात् ,यह, शब्द अंगुली निर्देशहुआ साक्षात् प्रत्यक्षका विषय होताहै, तहां अभिप्राय यह है कि ब्रह्मवेत्ता आचार्य से तत्त्वमस्यादि, महावाक्यार्थ के श्रवण ज्ञानसे जो प्रत्यक्षादि सर्व प्रमाणोंका अविषय अरु सर्वका प्रकाशक द्रष्टा चैतन्य आत्मा सो इदं शब्दके विषय घटवत् प्रत्यक्ष न होयके इदं प्रत्यय को सविषयके प्रकाशक द्रष्टा आत्माको " प्रतिबोधविदितं " अपनेआप आत्मत्वपने से असंदिग्ध अनुभव करे हैं । तिसको अपरोक्ष से देखताहुआ १३ । २२ ॥

---o---

तस्मादिदन्दो नामेदन्द्रो हवै नाम । तमिदन्द्रंसन्त मिन्द्रमित्याचक्षते परोक्षेण । परोक्षप्रिया इवहिदेवाः परोक्षप्रियाइवहि देवाः १४। २३॥

इति तृतीयखण्डः ॥

हे सौम्य, जिस करके सर्वान्तर ब्रह्मको यह (अपरोक्ष, चक्षुरादि सर्वका द्रष्टा, प्रत्यगात्मा) इसप्रकार (अंगुली निर्देश के विषय घटवत्) देखाहुआ, [तिसके इन्द्रनामकी प्रसिद्धिसे भी तिसके ज्ञानको अपरोक्षपना है, इसप्रकार कहने को "(तस्मादिदन्द्रोनाम" ताते इदन्द्रनामहै, । यह वाक्यहै तिसका व्याख्यान करते हैं] ताते "(तस्मादिदन्द्रो नामेदन्द्रो हवैनाम " (इदन्द्र नामवाला होताहुआ, इदन्द्र नामवाला प्रसिद्ध है (अर्थात् परमात्मा इदन्द्र नामवाला होताहुआ, अरु लोकबिषे सो ईश्वर इदन्द्र नामवाला प्रसिद्धही है "(तमिदन्द्रं सन्तमिन्द्रमित्याचक्षते परोक्षेण " (तिस इदन्द्रहुये सतेको परोक्ष करके इन्द्र ऐसाकहते हैं) अर्थात् तिस इस प्रकार इदन्द्रहुये परमात्माको यहब्रह्मवेत्ता (प्रत्यक्ष ब्रह्मको आत्मभाव से जाननेवाले) तिस को अत्यन्त पूज्य होने से अरु तिसके प्रत्यक्ष नाम ग्रहण के भयसे सम्यक् व्यवहारार्थ परोक्षनामसे इन्द्र ऐसा कहते हैं ॥ [पूज्य पुरुषों का नाम परोक्षपने करके ही कहने को योग्य है इस अर्थ विषे प्रमाण कहते हैं । यहां यह भावहै कि, इसही से लोकबिषे आचार्य जो हैं सो , उपाध्याय , इस नामके कहनेसे ही प्रीति को करते हैं, परन्तु विष्णुमित्रादि नामके ग्रहण बिषे नहीं ॥ (अर्थात् कोई एक , विष्णुमित्र , इस प्रख्यात नामसे प्रसिद्धहै, अरु विद्यार्थियोंको अध्ययन करावता है उस आचार्य पुरुष को , उपाध्याय, इस गुणविशिष्ट नामसे बुलाइये तब वह विशेष प्रीति करता है, अरु जो कदापि उसको , विष्णुमित्र , इस सामान्य नामसे बुलावो तो उत्तर तो देताहै परन्तु प्रीतिसे नहीं॥

अथ द्वितीयाध्याय ॥

पुरुषे ह वा अयमादितो गर्भो भवति । यदेतद्रेत स्तदेतत्सर्व्वेभ्योऽङ्गेभ्यस्तेजःसम्भृतमात्मन्येवात्मानंबि भर्ति । तद्यदास्त्रियां सिञ्चत्यथैतज्जनयति । तदास्य प्रथमं जन्म १ । १४ ॥

यथार्थ नामका अन्यरूपके करने से स्वरूप का आच्छादन होता है सोई नामका परोक्षपना है, इस प्रकार कहते हैं] तैसेही देखावते हैं "(परोक्षप्रिया इवहि देवाः परोक्षप्रिया इवहिदेवाः" (जाते देव परोक्ष प्रियवत् है २) अर्थात् जब देवता परोक्षप्रिय (अर्थात् परोक्षनामसे प्रीतिवाले) वत् हैं, देव परोक्षप्रियवत् हैं, तब सर्व देवताओं का भी परमदेव (ताते महादेव) सो परोक्षप्रिय (अर्थात् परोक्ष नामके ग्रहण से प्रीतिवाला) है तिस में क्या कहना है, किन्तु कुछभी नहीं । यहां जो द्विवार कथन है सो इस अध्यायकी परिसमाप्त्यर्थ है १४ । २३ ॥

इति श्रीप्रथमाध्यायगत तृतीयखण्डभाषाभाष्य

इति श्रीऐतरेयोपनिषद्गतप्रथमाध्यायभाषाभाष्यंसमाप्तम्॥

अथ ऐतरेयोपनिषद्गतद्वितीयाध्यायभाषाभाष्यं प्रारभ्यते ॥

हे सौम्य, [इस प्रथमाध्यायविषे आत्मा की एकता, अरु लोकपालों की सृष्टि, अरु क्षुधा तृषाकी योजना, इत्यादिक बहुत अर्थोंको कथन किये हैं ताते, अरु सर्वके भी कहने को इच्छित की शङ्काके निवारणार्थ कहनेको इच्छित (अर्थात् जिस अर्थके कहने की इच्छा है) कहते हैं । यहां सर्व शरीरों विषे भी एकही आत्मा है, सोई परमेश्वर है, इस प्रकार का जो अग्रिम कहनेका अर्थ सो "एतत्" यह,। इस शब्दका अर्थ है]॥ इस अध्याय विषे अग्रिम कहनेकाअर्थ कहनेको इच्छित है [प्र० । यहही अर्थ कहनेको कैसे इच्छित है (क्या अन्य अर्थ नहीं । यह शङ्काकरके

पूर्व ग्रन्थकी रचनाको विचारकरके देखने से यह ही (जो आगे कहेंगे (कहनेको इच्छितहै,इसप्रकार कहतेहैं। यहां यहअर्थ है कि यद्यपि लोकादिक की सृष्टिसे अरु अन्यकी सृष्टि से उत्पत्ति अरु स्थिति ही कही, तथापि उत्पत्ति अरु स्थितिके कथनकरके अर्थ से प्रलय भी कथनकिया। अरु प्रलयका कर्त्ता, इसप्रकार कहे हुये लोकपालादिकों केही भोक्तापने के कथन से सो असंसारी है, इसप्रकार कहा॥ सामान्य से सर्व्वको जानता है ताते सर्व्वज्ञ है। अरु विशेष करके सर्व्वप्रकार से भी सर्व्वका वेत्ता (जाननेवाला) होने से सर्व्ववित् है]। जिसकरके जगत्की, उत्पत्ति, स्थिति, अरु लय, का कर्त्ता असंसारी सर्व्वज्ञ, सर्व्ववित्, सर्वशक्तिमान्, परमेश्वर, इस जगत्को स्वरूप से भिन्न अन्य वस्तुको न ग्रहण करकेही आकाशादिकों के क्रमसे सृजके (तिनके कार्यकी सिद्धिके अर्थ (अरु स्वस्वरूपके प्रबोधार्थ प्राणादिक सर्वकलावाले शरीरों विषे आप प्रवेश करताहुआ। अरु प्रवेश करके अपने आत्माको "यथाभूतमिदं ब्रह्मास्मीति" यथाभूत यह ब्रह्म मैं हौं,। इसप्रकार साक्षात् जानताहुआ। [जिस करके सर्व्व शरीरों विषे एकहीका प्रवेश कहाहै, अरु जिसकरके प्रवेशसे प्राप्तहुयेका ब्रह्मभावसे ज्ञान कहाहै,ताते सर्व शरीरों विषे एकही आत्माहै, अरु सो सर्व्वज्ञ ईश्वर है अन्य नहीं। यह वाक्यार्थ कहनेको इच्छित है, इसप्रकार पूर्व से सम्बन्ध है] ताते सोई आत्मा सर्व्व शरीरों विषे एकही है, अन्य नहीं। अरु अन्य वाक्यभी "(स म आत्मा ब्रह्मास्मीति)" सो मेरा आत्माहै,। ऐसे जानना, "मैं ब्रह्महौं" इसप्रकार जानना,। अरु "आत्मा वा इदमेकएवाग्रआसीत्" "ब्रह्मततमिति" यह आगे निश्चय करके एक आत्माहीथा, परिपूर्ण ब्रह्मको देखताहुआ,। इसप्रकार कहा। अरु [,,सो मेरा आत्मा है ऐसे जानना,, यह संहितारूप उपनिषद्गत वाक्यका शेषभी इसही अर्थको कहताहै, इसप्रकार कहते हैं] अन्य वाक्योंविषे भी यहही अर्थ कहाहै॥ ननु [प्रवेश

के वाक्य से जो आत्मा की एकता कही सो अयुक्त है, क्योंकि, उस वाक्यकोही असंगत अर्थवान्पना है, इसप्रकार वादी शंका करे हैं । यहां यह अर्थ है कि आत्माको अशरीर होने से मस्तक के विदीर्ण करनेरूप , करतापना, अरु सर्वगत होने से ,प्रवेश, संभवे नहीं] सर्वगत सर्वात्मा के प्रवेश से रहित केशाग्रमात्रभी वस्तु नहीं है, एतदर्थ सो छिद्रके ताईं पिपीलिकावत् सीमाको विदीर्ण करके कैसे प्रवेश करताहुआ, तहां । [यहां क्या प्रतीयमान अर्थविषे असंगतपना है, अथवा कहने के अर्थविषे असंगतपनाहै, यह दो विकल्प हैं । तिनमें प्रथम पक्ष वा विकल्पविषे सर्व वेदको भी असंगत अर्थवाला होनेकरके सर्वको भी अप्रमाणपना होवेगा, अरु वेदको सो अप्रमाणपना युक्त नहीं, इसप्रकार सिद्धान्ती कहे है । यहां यह अर्थ है कि चक्षुरादिक करणों से ईक्षण प्रसिद्ध है । अरु मृत्तिका आदिक उपादानवाले कोही स्रष्टापनाहै । अरु दोनों हाथोंसेही ग्रहणकरना अरु अपने अवयवों से जोड़ना । [अर्थात् वस्त्र भूषणादिकों का धारणकरना आदिक] होताहै, सो अशरीरीको असंगत है । अरु शस्त्रादिक मूर्त्त से विदारण होता है अमूर्त्त से नहीं । अरु मुखादिकनसे अग्न्यादिकों की उत्पत्ति के हुये तिन मुखादिकोंका दाहादिक होवेगा [जैसे काष्ठ से अग्निकी उत्पत्तिहुये काष्ठका तैसे] अरु मूर्त्तरूप वस्तु काही अन्य से संयोग करनेको शक्यहै, क्षुधादिक अमूर्त्तका नहीं अरु शरीरकी सृष्टिकी उत्पत्ति के पूर्व अग्नि आदिकों करके प्रार्थना करनी असंभव है । अरु तिसकालविषे गौआदिक शरीरोंके अभावसे, अरुअपनेको अशरीरी होनेसे तिसके गौ आदिकोंके लानेकाभी असंभवहै । अरु उन देवताओं को अशरीर होनेकरके अमूर्त्तरूप होनेसे तिनकेप्रवेशकाभी असंभवहै । अरुअचेतनरूप अन्न को पलायन होनेका असंभवहै । अरु वागादिकोंको हस्तादिकोंवत् वस्तुकेग्रहणविषयक असामर्थ्यसे तिनकरके ग्रहणकरनेकी इच्छा होनेका असंभवहै ॥ इसप्रकार समस्त प्रकरण असंगत अर्थवाला

होवेगा] तहां सिद्धान्ती कहे है, हे वादी! यह तैंने अत्यन्त अल्प प्रश्नकिया, अरु यहां बहुत से प्रश्न करने को योग्य है। करण रहितहुआ ईक्षण को करताहुआ। कुछभी [अन्य] वस्तुके ग्रहण किये विनाही लोकनको सृजताहुआ। अरु जलादिकोंसे पुरुषको ग्रहण करके तिसको अपने अवयवों से [जो स्वरूपसे निरवयव है] योजना करता हुआ। तिस के चिन्तनमात्र सेही मुखादिक भेदको पावतेहुये। अरु मुखादिकन से अग्नि आदिक लोकपालहुये। अरु तिनके मध्य क्षुधादिकोंकी योजनाहुई। अरु तिन [अशरीरी] देवताओंने स्थानार्थ प्रार्थनाकिया। अरु तिनके अर्थ गौ आदिक शरीरों का देखावना। अरु तिन [देवताओं] का यथायोग्य स्थानों विषे प्रवेश। अरु उत्पन्न किये अन्नका पलायन होना। अरु वाणी आदिकों को तिस अन्नके भक्षण करने की इच्छा होनी॥ यह सर्व सीमाके विदारण अरु प्रवेश इनके तुल्यही है॥ ननु, [तब सर्व अप्रमाण होवे, इस प्रकार कोई एक वादी शंका करे है] तब यह सर्व अघटित (होनेसे) अप्रमाण होवे, [अरु कहनेको इच्छित अर्थ विषे असंगति नहीं इसप्रकार द्वितीय पक्षको दूषण देतेहैं। यहांयह अर्थहै कि,लोकों विषे आपही द्वारको करके अनेक गृहविषे स्थितहुये देवदत्त की एकताके देखने से, तैसेही यहां आत्मा की एकताहै, इसप्रकार बोधन करनेको विदारण अरु प्रवेश कहते हैं, परन्तु सो अर्थ कहने को इच्छित नहीं, क्योंकि तिस [सिद्धान्ती] को कहने को इच्छित जो आत्मा की एकता तिसके बोधका द्वार होने करके कथनकिये होनेसे [अर्थात् सीमाका विदारण अरु प्रवेश का कथन् आत्माकी अभेदताका बोधकद्वारहै ताते] तातेउत्तमता रूप अर्थ का द्वार होनेकरके, यज्ञ प्रकरण, विषे उक्तवपा (पशु के अंगका भाग विशेष) के भक्षण आदिकवत् अर्थवादरूप है] सो कथन बने नहीं, क्योंकि यहां आत्माके बोधरूप अर्थमात्र कोही कहना इच्छित है, ताते यह सर्व अर्थवाद है, याते दोष

नहीं । अथवा [असत् ही प्रवेशादिकों का यहां कथन है, इस प्रकार अंगीकार करके वपा के भक्षणादिकों के वाक्यवत् तिन प्रवेशादिकों के गुणार्थवादपने को कहके अब „ अग्नि हिम का औषधहै,, इस वाक्यवत् तिसके भूतार्थवादपनेको अंगीकार करके कहते हैं । यहां यह अर्थ है कि मायासे अघटित भी सर्व घटता है, क्योंकि तिसको अघटित अर्थकी घटावनेवाली पनाहै ताते इस कथन करके सृष्टि आदिकों को अघटित अर्थरूप होनेसे गंधर्व नगरादिवत् मिथ्याहीहै, इसप्रकार स्पष्ट करनेको अघटित सृष्टि आदिक अर्थभी श्रुतिने देखायाहै । इस प्रकार कहतेहैं] मायावीवत् महामायावी सर्व्वज्ञ सर्व्वशक्तिमान् देव आख्यायिकादिक प्रपंच बिषे लौकिकवत् सुखसे वक्ताको प्रतिपादन करनेके अर्थ अरु श्रोताके निश्चयार्थ सर्व इस चराचरको रचताहुआ यह पक्ष अत्यन्त युक्तहै । [ननु, लोकनकीसृष्टि आदिकनको अन्य प्रमाण के अगोचर होनेकरके अपूर्व होनेसे यहां कथनकरी जो आख्यायिका है तिसको तिस सृष्टि आदिकरूप अर्थकी परायणता होवे, यह आशंका करके, तिसको अपूर्वताके हुये भी तिस के निश्चय करके फलके अभाव से, अरु फलवान् औ अज्ञात (अपूर्व) अर्थ बिषे श्रुति के तात्पर्य के नियम से । अन्यथा रुद्रके रोदनादिकों को भी अपूर्व होनेकरके, तहांभी तात्पर्य की प्राप्ति से सृष्टि आदिकबिषे श्रुतिका तात्पर्य नहीं, इस प्रकार कहतेहैं] अरु सृष्टिकी आख्यायिकादिकों के ज्ञानसे कुछ भी फल अंगीकार करते नहीं, अरु [आत्माके निश्चय बिषे तो फलको देखते हैं, अरु तिस बिषे ही श्रुतिकी परायणता युक्त है इस प्रकार कहते हैं, यहां यह अर्थ है कि । "एतावदरेखल्वमृतत्वम" "तमेवं विद्वानमृत इह भवति" । "विद्वानमृतस्समभवत्" इत्यादि अन्य श्रुतियों के प्रमाण से, अरे इतनाही निश्चय करके अमृतभावहै, तिसको इसप्रकार जाननेवाला यहां अमृत (मोक्ष) होता है, विद्वान् अमृत होताहुआ । इत्यादि अनेक श्रुतियों बिषे

ज्ञानसे अमृत भाव (मोक्षरूप फल) प्रसिद्ध है] एक आत्मस्वरूप के ज्ञानसे तो अमरणभावरूप फल सर्वउपनिषदों विषे प्रसिद्ध है। अरु "(समंसर्वेषुभूतेषु तिष्ठन्तंपरमेश्वरमिति)" सर्व भूतोंविषे समानता से स्थित परमेश्वरहै, तिसको, इत्यादिक गीता स्मृतिके वाक्याविषेभी प्रसिद्ध है ननु [आत्माकी एकता ही इस अध्याय का अर्थ है, इस प्रकार कहके अब इसही को स्थिर करनेको वादी शङ्का करता है] जीव ईश्वर अरु निरुपाधिकब्रह्म, इस भेदसे आत्मा तीनहैं। तिनमें कर्त्ता भोक्ता (सुखी दुःखी) संसारी जीव एक आत्मा है, सो सर्वलोक अरु शास्त्र विषे प्रसिद्ध है। अरु अनेक प्राणियों के कर्म फल के उपभोगके योग्य अनेकन स्थानवाले जो लोक अरु देह तिनके रचने रूप शास्त्रानुसार पूर्व (इसके प्रथम वाक्यविषे) कथन किये लिङ्ग (चिह्न) करके, पुर अरु अट्टालिका आदिकोंकी रचनारूप लिङ्गसे तिसकी कुशलताके ज्ञानवाले तिनके कर्त्ता तक्ष (शिल्पी) आदिकवत् जानने में आवताहै, ऐसा सर्व जगत्का कर्त्ता अद्वितीय चेतनरूप जो ईश्वरहै सो दूसरा आत्मा जानते हैं। अरु"यतोवाचो निवर्त्तन्ते"जिससे वाणियां निवृत्तहोतीहैं'अरु"नेतिनेति" इत्यादि वाक्यकरके शास्त्रोंविषे विख्यात, अरु उपनिषदोंकरके प्रतिपाद्य (जो सर्व निषेधोंकी अवधि अर्थात् जहां सर्वनिषेधों का पर्यवसान है, अरु प्रत्यक्षादि सर्व प्रमाणोंका अविषय) जो शुद्ध ब्रह्म रूप परमपुरुष है, सो तृतीय आत्मा है। इसप्रकार यह तीनों आत्मा परस्परमें विलक्षण हैं। तहां एकही अद्वितीय असंसारी आत्मा है, यह किसप्रकार जाननेको शक्य है, तहां [जीवकी जो कर्त्ता भोक्तापना आदिरूप विलक्षणता कही सो असिद्धहै, क्योंकि तिस जीवको अन्यप्रमाणका अविषय होने करके तिस धर्मवान् पने करके प्रमाज्ञानका विषय करनेको अशक्य है ताते। इस हेतु करके जीव अरु परमात्मा का भेद है नहीं, इस अभिप्राय से सिद्धान्ती समाधान करता है। यहां यह अर्थ है कि तिस जीव

को ज्ञेयताके अभावहुये । अर्थात् जीव चैतन्य होनेसे किसीकाभी ज्ञेय, किसीकरके जाननेयोग्य, नहीं तिसहेतु से । कर्त्तापने आदिक धर्म । जो उस विषे वास्तव करके स्वरूपसेही नहीं । तिन करके युक्तहुआभी सो । बुद्ध्यादिकों करके । जानने को शक्य नहीं] सिद्धान्ती कहे है, तिन तीनों आत्मा विषे प्रथम जीवही प्रमाणोंका अविषय होनेकरके कर्त्ता भोक्तापने रूप धर्मकरके युक्त कैसे जानने में आवेगा । अर्थात् जब जीव प्रमाणका अविषय है तब कर्त्ता भोक्तापने रूपधर्मकरके युक्तभी, वाजीवकर्त्ता भोक्तापने रूप धर्मकरके युक्त है इसप्रकार, कैसे जाननेमें आवेगा । किन्तु किसीप्रकारभी जानने में आवे नहीं ॥ ननु, श्रोताहै, मन्ताहै, द्रष्टा है, आदेष्टा । वर्णरूप शब्दका वक्ता । है, अघोष्टा । ध्वनिरूपशब्द का कर्त्ता । है, विज्ञाता है, प्रज्ञाता है, इसप्रकार जानते हैं, तहां [पूर्ववाक्यविषे "स एषोऽश्रुतोऽमतोऽविज्ञातः" सो यह अश्रुतहै, अमत है, अविज्ञात है, । इसप्रकार तिसकी ज्ञेयताका निषेध होनेसे तिसविषे ज्ञेयपना विरूप है, इसप्रकार कहते हैं] सिद्धान्ती कहे है, जिसको श्रवणादिकों का कर्त्ता होनेकरके जानते हैं । । अर्थात् जिसको श्रवणादिकों का कर्त्ता ऐसा जानते हैं परन्तु इदं प्रत्ययके विषय अंगुली निर्देश घटवत्, यह श्रोता है, इस प्रकार अपने जाननेवाले ज्ञातारूप से पृथक् करके ज्ञेयवत् जानतेनहीं, किन्तु अहंप्रत्ययका लक्ष्य अहं श्रोता है, अहंमन्ता है, इत्यादि प्रकार अपने ज्ञातास्वरूप से अभिन्नकरके उस श्रवणादि कर्त्ता धर्मवान् जीवको जानते हैं, ताते । सोई " अमतो मन्ता विज्ञातो विज्ञाता, इत्यादि" अमतहुआ मन्ता है, अविज्ञात हुआ विज्ञाताहै, । अर्थात् मनका अविषयहुआ माननेवाला अरु बुद्धि आदिकों करके अविज्ञात हुआ सर्वका जाननेवाला है । क्योंकि "यद्वाचानाभ्युदितं येनवागभ्युद्यते, यन्मनसानमनुते येनाहुरमनो मतम् " वाग् अरु मन आदिक बाह्यकरण अरु अन्तःकरण जो सर्व के जानने करने आदिकों विषे सामग्री है सो उसको नहीं

जानती अरु वो उनसामग्रियों का ज्ञाता प्रकाशकहै, तातेही उस बिषे ज्ञेयपनेका अभावहै। इसप्रकार अन्यश्रुतियोंने भी। उसबिषे ज्ञेयत्वका। निषेध कियाहै। अरु "नमतेर्मन्तारं मन्वीथा न विज्ञाते र्विज्ञातारं विजानीयात्, इत्यादि" मतिके मन्ताको मनन करना नहीं। अर्थात् मतिके मन्ताको मनन न करोगे क्योंकि वो मनका विषय नहीं। विज्ञातिके विज्ञाताको जानना नहीं। अर्थात् विज्ञातिके (बुद्धिके जाननेपनेके) विज्ञाता (जाननेवाला) को न जानोगे, क्योंकि वो बुद्धिके ज्ञानका विषयनहीं। इत्यादि रूप यह अन्यश्रुति है॥ ननु [दोनों श्रुतियों की प्रमाणता की तुल्यता से निषेधके असंभव से प्रत्यक्ष प्रमाण करके अज्ञेयपना अरु अनुमान से भी अज्ञेयपना कहो] जब आत्मा सुखादिवत् प्रत्यक्ष प्रमाण से जाननेविषे आवे तब तिसका श्रुतिविषे निषेध करना, सत्यहै, । यहां, सत्यहै, यहकथन आक्षेपकहै ताते इसका पर्याय असत्य है ऐसा जानना, क्योंकि वादीका कथन है। अरु "नमतेर्मन्तारं मन्वीथा" मतिके मन्ताको मनन करना नहीं, इत्यादि वाक्य से प्रत्यक्ष ज्ञानका निवारण करते हैं, परन्तु श्रवणादिरूप लिंग से आत्माको जानते हैं, तहां किसकरके निषेध होवेगा, तहां [आत्माविषे एककालमें दोनों ज्ञानके असंभव से, श्रवणादिकालमें मनन अरु विज्ञानके असंभव से, श्रवणादिकरके मनन अरु विज्ञानरूप आत्मा को विषय करनेवाला, वा अन्य को विषय करनेवाला अनुमति ज्ञान सम्भवे नहीं, इस प्रकार सिद्धान्ती कहताहै, यहां यह अर्थ है कि, श्रवणादि क्रिया के साथही वर्त्तमान होने से श्रवणादि क्रियारूप आधारवाले होनेसे आत्माविषे वा अन्यविषे तिसकी मनन अरु विज्ञानरूप क्रिया संभवे नहीं। इस प्रकरण विषे मनन अरु विज्ञान शब्द करके अनुमति ज्ञान कहते हैं, क्योंकि यहां आत्मा को तिस अनुमतिके विषयता की शंकावादीने कियाहै ताते [सिद्धान्ती कहे है, श्रवणादिरूप लिंगसे भी आत्मा को किसप्रकार जानते हैं

किन्तु किसीप्रकार भी नहीं यावत् जब आत्मा श्रवण करने को योग्यहै,ऐसा शब्द सुनते हैं,तब तिसको श्रवणादि क्रियाकरकेही सहित वर्त्तमान होनेसे (अर्थात् श्रवणादि क्रियाका आश्रयहोनेसे) तिसको आप बिषे वा पर बिषे मनन अरु विज्ञानरूप क्रिया (अनुमति प्रमाण) संभवे नहीं, [तब श्रवणों के एक काल बिषे असंभवहुये अन्यको विषय करनेवाली मननक्रियासे आत्मा मानने को योग्य है, यह आशंका करके, विजातीय दोनों क्रिया-वत् सजातीय भी दोनों क्रिया संभवे नहीं, इस प्रकार कहते हैं [तैसे अन्य ठिकाने भी मननादिक क्रिया बिषे अन्य मन-नादिक क्रिया भी संभवे नहीं। अरु श्रवणादि क्रिया जो हैं सो अपने विषयोंबिषे ही हैं, अर्थात् अपने विषयकोही विषय करने-वालियां हैं, परन्तु अपने आश्रय को विषय करनेवालियां हैं नहीं। [किंवा "नमतेर्मन्तारं मन्वीथा" मति के मन्ता को मनन करनाही (इस प्रकार आत्माको मनन की विषयता का निषेध है ताते, मननकर्त्ता आत्माबिषे मनन क्रिया संभवे नहीं, इस प्रकार कहते हैं] जिसकरके मनन करनेयोग्य वस्तुसे अन्य ठिकाने (मननका आधार आत्माबिषे) मनन कर्त्ताकी मनन क्रिया संभवे नहीं, क्योंकि 'जैसे कुठारादिकों के (काष्ठछेदनादि रूप) क्रियाका काष्ठसे इतर स्थानबिषे अदर्शन है। ताते मनन के अविषय अरु मनन कर्त्ता आत्माबिषे मननक्रिया संभवे नहीं ननु, ["मनसः सर्वमेवमन्तव्यम्" मनके आधीन यह सर्व होताहुआ (इस श्रुति करके सर्वको मनकी विषयता होने से आत्मा बिषेभी मननकी विषयताहै इसप्रकार वादी शंका करता है] मनको सर्वही मनन करने योग्य है, एतदर्थ आत्माबिषे भी मननकी विषयता होवेगी,तहां[ऐसेहुयेभी मनको करणत्वहोनेसे, अरु क्रियाका कर्त्ताबिनाअसंभवहै ताते, मनसे भिन्नमननकाकर्त्ता अवश्य अंगीकार करनेको योग्यहै, इस प्रकार सिद्धान्ती कहता है] कहते हैं कि 'सत्य ऐसेही है। तथापि सर्व भी मननका

विषय मननकर्त्ता बिना मन करनेको शक्य नहीं । जब, [मनन कर्त्ताकी आवश्यकता होहु, तिस करके सिद्ध क्या होता है, इस प्रकार वादी शङ्का करेहै] ऐसेहै तबतिस करके सिद्ध क्याहोताहै? तहां सिद्धान्ती कहेहै, यहां यह सिद्धहोवेहै कि जो यह सर्वका मनन कर्त्ताहै सो मननकर्त्ता।अर्थात्मननक्रियाका आश्रय।हीहै, मननका विषयनहीं होवेगा अरुमननकर्त्ताका दूसरा मननकर्त्ता कोई नहीं, अरुजब सो मननकर्त्ता आत्मा।अन्यचेतन करकेही। मननकरनेको योग्यहै, तबजिसचेतन आत्माकरके मननकरने को योग्य है, अरु जोमनन करनेयोग्यहै, सोदोनों परस्परभिन्न हैं, । (अर्थात् मनन करताआत्मा जबअन्यआत्मा करके मननकरने योग्यहै तब एक आत्मा मननकर्त्ता अरु एकमनन करनेयोग्य इसप्रकार परस्पर में दो भिन्न आत्माहुये। इस करके एकही शरीरविषे दोनों आत्मा प्राप्तहोवेंगे । अरु एकही आत्मा मनन कर्त्ता अरु मनन करने योग्य होने करके वंश आदिकोंवत् उभय प्रकार से खण्डित होवेगा, ताते दोनों प्रकार असंभवही है । जैसे दोनों दीपकके परस्पर प्रकाश अरु प्रकाशक भावका असंभव है, क्योंकि दोनों तुल्य हैं । अर्थात् एकस्थानमें दो दीपक हैं परन्तु तिनमें परस्पर प्रकाश प्रकाशक भावनहीं क्योंकि दोनों प्रकाश रूप हैं, अरु जो प्रकाशरूप है सो प्रकाशक है अरु जो अप्रकाशी है वो प्रकाश्य है ताते जहां एक प्रकाशवान् अरु एक अप्रकाशी होता है, तहां प्रकाश्य प्रकाशक भाव होताहै, अरु जहां दोनों समान प्रकाशधर्मा होते हैं तहां प्रकाश्य प्रकाशक भाव संभवे नहीं तैसेही एक शरीर में दो आत्माके होने से भी एक मननकरने योग्य अरु एकमननकर्त्ता मानिये तो सो बनेनहीं, क्योंकि दोनों आत्मा समान चैतन्य हैं, अरु मनन करने योग्य वस्तु जड़ होती है अरु मननकर्त्ता चैतन्यहोता है, अरु आत्मादोनों चैतन्य हैं ताते एक शरीरविषे दो आत्मा मानने से भी परस्परमें मनन करता अरु मननकरने योग यह भाव बने नहीं । अरु मननकर्त्ता

के मनन करने योग्य वस्तुविषे आत्माके मननार्थ मननरूप व्यापारसे रहितकाल नहीं। अरुजब मननकर्त्ताभी लिंगसे आत्मा को मनन करताहै तबभी पूर्ववत् लिंगसे मननकरनेयोग्य आत्मा, अरु जो तिसका मननकर्त्ता, वे दोनों एकही शरीरविषे प्राप्त होवेंगे, ताते यहां भी “ एक एव वा द्विधेति ” सो एकही है वा दो प्रकारका है, । यह पूर्वोक्त दोष होवेगा। ननु, [ऐसे “ अमतो अविज्ञात ” अमतहै अविज्ञातहै, । इस युक्तिसहित श्रुति करके सर्वप्रकार से आत्माकी ज्ञेयताके अभाव से, ऐसे सिद्धहुआ,तहां पूर्ववादी शंका करताहै] जब आत्मा प्रत्यक्षप्रमाण से नहीं जाना जाताहै,अरुअनुमान सेभी नहीं जाना जाताहै तब“समआत्मेति” सो मेरा आत्माहै, ऐसे जानना, । यह कैसे कहतेहो, वा “ श्रोता मन्तेत्यादि ” श्रोता है मन्ता है, इत्यादि वाक्य कैसे कहतेहो, । तहां [तहां “ विद्यादिति ” इस श्रुतिविषे अन्य के निषेध हुये स्वप्रकाशपने करके आत्माका स्वरूपसे स्फुरणही कहते हैं,परन्तु विषय होनेकरके वेद्यता नहीं, इसप्रकार हम समाधानको कहते हैं। इस अभिप्राय से आत्माके श्रोतापने आदिककी श्रुतिविषे सिद्धान्ती समाधान कहे है] कहे है, आत्मा श्रोतापने आदिक धर्मवाला नहीं, क्योंकि आत्माका अश्रोतापनादिक श्रुति विषे प्रसिद्धहै, तहां [ऐसे हुयेआत्मा श्रोता है मन्ताहै, अरु श्रोतानहीं मन्तानहीं, इसरीतिसे दोनोंप्रकारकरके श्रवणहुये श्रोतापने धर्म वालाही है इसप्रकार पश्चात् विपरीत ग्रहण तुझको युक्त नहीं, इसप्रकार सिद्धान्ती कहता है] क्यों विषम देखता है, हे वादी [ननु, लोक प्रसिद्धिके बलसे अनात्मधर्मताके निश्चयसे विषमता नहीं यहआशङ्का करकेसिद्धान्ती निषेधकरेहै]यद्यपि तुझको विषमनहीं है परन्तु मुझको विषम भासता है। कैसे कि जब यह आत्मा श्रोताहै तब मन्ता न होवेगा, अरु जब मन्ताहै तब श्रोता न होवेगा। तहां ऐसेहुये एकपक्षविषे श्रोता वा मन्ताहै अरु द्वितीय पक्ष विषे आत्माश्रोताभी नहीं अरु मन्ता नहीं। तैसे अन्यठिकाने

(द्रष्टापने अरु विज्ञातापने आदिकोंबिषे) भी कदाचित् होनेपनाहै। जब ऐसे है तब श्रोतापने आदिक धर्मवाला अरु अ-श्रोता आदिक धर्मवाला आत्मा है, इस संशयके ठिकाने कैसे तुझको बिषमता नहीं भासती, किन्तु भासनी चाहिये जैसे जब देवदत्त चलता है तब स्थित नहीं किन्तु गंताही है, अरु जब बैठा है तब सो गंता नहीं किन्तु स्थितही है। जब ऐसे व्यवस्था है, तब तिसको पक्षबिषे (क्रमसे) गंतापना अरु स्थितपना है, परन्तु गंतापना वा स्थितपना नित्य नहीं। तद्वत् आत्मा का श्रोतापनादिकभी नित्य नहीं। [इसके मध्य अभिप्रायके न जाननेवाले जो वैशेषिकादि हैं सो आत्माका श्रोतापना अरु अश्रोतापनादिक दोनों भी कदाचित्क (अनित्य) ही होवो, इसप्रकार कहते हैं, सोई कहते हैं, यहां वैशेषिकादिवादी भी तैसेही देखते हैं। पक्षके प्राप्तहुये श्रोतापने आदिक करके, आत्मा श्रोता अरु मन्ता इत्यादिक कहते नहीं ! जिस करके ज्ञानको संयोग से जन्यपना अरु एक कालबिषे न होनेपना कहते हैं। अरु मैं अन्यठिकाने [ज्ञानके कदाचित्पने बिषे अरु एक कालमें न होने बिषे क्रमके अनुसार वे वैशेषिकादि प्रमाण कहते हैं,। तहां यह अर्थ है कि जब मन न होवे चक्षुरादि इन्द्रियन के एक कालबिषेही रूपादिकन से सम्बन्धकेहुये एक कालबिषेही सर्व इन्द्रियों से सर्व विषयों का ज्ञान होवेगा, क्योंकि इन्द्रिय अरु विषयों के सम्बन्धरूप सामग्री का सद्भाव है ताते, अरु तैसे एक कालबिषे सर्व बिषयों का ज्ञान नहीं होवे है, एतदर्थ क्रमकरके तिस तिस इन्द्रियसे संयोगीमन अंगीकार करनेयोग्य है। तैसेहुये एककाल बिषेसर्व इन्द्रियों से मनके संयोगके अभावसे, एक कालबिषे सर्व विषयों का ज्ञान नहीं होताहै। एतदर्थ एककाल बिषे रूपादिसर्व विषयों के ज्ञानके असंभवरूप लिंगसे, मन है ऐसा कहते हुये वैशेषिकादि एककालबिषे सर्वके ज्ञानोंका असंभव है। इसप्रकार कहतेहैं।] मनवाला होताहुआ (अर्थात् मेरामन अपने ठिकाने

न रहा। ताते नहीं देखताहुआ। अर्थात् मेरा मन और ठिकाने था ताते मैंने देखा नहीं। इत्यादिक एककालबिषे ज्ञानका जो असंभव है सो मनका लिंगहै, इस अर्थको योग्य देखते हैं। [वैशेषिकादिककेमतके सिद्धान्तीकरके देखायेहुयेतब वैशेषिकादिकों की रीतिसे दोनों श्रुतियों के संभवसे अरु आत्माके श्रोतापने आदिक धर्मकी सिद्धि से तैसेही होय, इस प्रकार पूर्वपक्षी वा तटस्थी, सिद्धान्ती के प्रतिशंका करते हैं। यहां यह अर्थ है कि जब इस प्रकार युक्त होय तब ऐसेही होय, क्या तुमको इष्ट नहीं] जब ऐसे योग्य होय तब ऐसे ही होय, क्या तुमको इष्ट नहीं, यहां सिद्धान्ती कहे हैं कि ऐसे जब [आत्मा के कदाचित्कज्ञानसे श्रोतापने आदिक धर्मवान्पने को श्रुति करके असम्मत होनेसे, सो योग्य नहीं है, इस प्रकार सिद्धान्ती तिस पक्षको खंडन करते हैं] तुमको इष्ट है तो होवो, परन्तु श्रुति का अर्थ तो। तुमारे कथन प्रमाण। संभवे नहीं ॥ क्या› श्रोता है, मन्ताहै, इत्यादिरूप श्रुतिका अर्थ नहीं है›तहां ["न श्रोता न मन्तेत्यादि" श्रोता नहीं मन्ता नहीं, इसश्रुति करके विशेष से तीनों कालोंबिषे भी श्रोतापने आदिक धर्मकी रहितता के। अर्थात् आत्मा कालत्रयमें भी श्रोतामंतापने आदि धर्मवान् स्वरूप करके नहीं, इस प्रकार श्रोतापने आदिक धर्म की रहितताके। प्रतिपादन से, तिन श्रोतादि धर्म करके युक्तपना असम्मतही है, इस प्रकार सिद्धान्ती उत्तर कहे हैं] कहते हैं, "न श्रोता मन्तेति" न श्रोता है न मन्ता है, इत्यादि श्रुति वचन से आत्मा को श्रोतापने आदिक धर्म करके रहितपना है ॥ ननु ["जब यह श्रोता है,,इत्यादि वाक्य करके श्रोतापने आदिक के पक्षबिषे प्राप्तहोने को तुमोंकरके कथनकिया है ताते, अरु वैशेषिकके मतको देखावने की बेलाबिषे कदाचित्क ज्ञानसे तिसके प्रतिपादनसे पक्षबिषे प्राप्त श्रोतापने आदिक अरु तिसके अभाव की विषय होनेकरके दोनोंश्रुतियों के सम्बन्धको वादी शंकाकरता

है] पक्ष कहिये विकल्पविषे प्राप्तहोने करके तुमने निषेधकिया सो [पक्ष (उभयरूपता (के असम्बन्धी श्रोतापने अरु तिसके अभावकी श्रुतियों करके अपनीप्रीतिसे प्रतीतिसे पक्षके सम्बन्धी होनेकरके तिसका संकोचयुक्त नहीं, इस प्रकार सिद्धान्ती अपने अभिप्रायको वर्णन करतेहुये कहते हैं] बने नहीं, क्योंकि आत्मा का जो अश्रोतापनादिक है सो नित्य है, क्योंकि। " नहिश्रोतुः श्रुतेर्विपरिलोपो विद्यते " । श्रोताके श्रवणका विनाश नहीं है, इत्यादि श्रुति करके कहे तिसके अंगीकार से॥ अरु जब ऐसे है तब श्रोतापनादिक नित्यही है , इसप्रकार अंगीकारहुये प्रत्यक्ष प्रमाणसे विरुद्ध एक कालविषे ज्ञानका असंभव अरु आत्माके अज्ञान का अभाव कल्पित होवेगा, अरु सो (होना (अनिष्टहै, तहां [यहांसे सिद्धान्ती, उक्त पूर्वपक्ष का समाधान करता है। यहां यह अर्थ है कि एक कालविषे ज्ञानका संभव अरु अज्ञान का सद्भाव इन दोनों दोषोंका संभव नहीं] सिद्धान्ती कहे है कि दोनों दोषोंका संभव नहीं, क्योंकि आत्माको श्रवणादिक अरु श्रोतापने आदिक धर्मवान् पनेकी श्रुतिसे । अरु अनित्य, मूर्त्तरूप अरु संयोग वियोगरूप अर्थवाले चक्षुरादिकनकी दृष्टि आदिकों को अनित्य पनाही है । जैसे अग्नि आदिकों का जो जलावना है सो तृणादिकों के संयोगसे जन्यहोनेकरके अनित्य है, तद्वत् ! अरु नित्य अमूर्त्तरूप अरु संयोग, विभागरूप धर्म से रहित आत्माको संयोग से जन्य दृष्टि आदिकरूप अनित्यधर्मवान् पना नहीं संभवताहै । जैसे "(नहि दृष्टुर्दृष्टेर्विपरिलोपोविद्यते "(द्रष्टाकी दृष्टिका लोपनहीं (इत्यादिरूप श्रुतिहै । अरु जब [नित्य अरु अनित्य भेदसे (दोनों दृष्टिके अंगीकारविषे वादी गौरवदोष की शंकाकरेहै] ऐसे है तब दृष्टिदोहैं, तिनमें चक्षुकी दृष्टि अनित्य है अरु आत्माकी दृष्टि नित्य है । अरु तैसे श्रुति (श्रवण) भी दो हैं तिसमें श्रोत्रकी श्रुति अनित्य है, अरु आत्मस्वरूप की श्रुति नित्य है । तैसे मति (विज्ञाति) भी बाह्य

अरु अबाह्य है । [श्रुतिकी प्रमाणता से उभय प्रकारकी दृष्टि के अंगीकार विषे गौरव प्रमाण करके सिद्ध (अकिंचित्कर) है इस प्रकार सिद्धान्ती कहताहै] ऐसेहुयेही "दृष्टेर्द्रष्टाश्रुतेःश्रोता" दृष्टिका द्रष्टा है, श्रुतिका श्रोताहै , इत्यादिरूप यह श्रुति घटित होवेहै। अरु लोकविषे भी चक्षुके तिमिरके आवने अरु जानेविषे दृष्टिनाशहुई, अरु दृष्टि उत्पन्नहुई इसप्रकारचक्षुकी दृष्टिका अनित्यपना प्रसिद्धहै।तैसे श्रुति अरु मति आदिकोंका भीहै। अरु आत्मा की दृष्टिका नित्यपनाही प्रसिद्धहै । अर्थात् जिस अन्तर दृष्टिकरके बाह्य दृष्टिकी मन्दता तीव्रता भावाभाव जानाजाताहै, सो नित्य अविनाशी आत्म दृष्टिहै । अरु लोकविषे निमीलित नेत्रवाला पुरुष कहताहै कि आज मैंने स्वप्न विषे अपना भ्राता देखा, तैसेही बधिर भावको प्राप्तहुआ पुरुष कहता है कि आज मैंने स्वप्न विषे मन्त्र । वा सुन्दर गायन श्रवणकिया । इत्यादि प्रसिद्धहै । अरु जब चक्षुके संयोगसे जन्यही आत्मा की नित्य दृष्टि होवे, अरु तिस चक्षु संयोगके नाशहुये नाशहोवे, तब निमीलित नेत्र वालापुरुष स्वप्नविषे नीलपीतादि पदार्थोंको न देखेगा।अरु"नहि द्रष्टुर्दृष्टे र्विपरिलोपोविद्यते"। द्रष्टाकी दृष्टिकालोप होता नहीं , । इत्यादिरूप यह श्रुति अघटित होवेगी। अरु " तच्चक्षुः पुरुषे येन स्वप्नंपश्यतीति" जिसकरकेस्वप्नको देखताहै सोचक्षुपुरुषविषेहै, इत्यादिरूप यह श्रुति नित्य आत्मदृष्टि की अरु अनित्य बाह्य दृष्टिकी ग्राहकहै। अरु बाह्य दृष्टि को उत्पत्ति विनाशादिक अनित्य धर्मवाली होनेसे तिसकी ग्राहक आत्मदृष्टिको तद्वत् प्रकाशकपना अरु अनित्यपनादिक जो लोकको प्रतीत होते हैं सो भ्रान्तिरूप निमित्त करके हैं, यह युक्त है । अरु जैसे भ्रमणादि धर्मवाले अलातादिकोंको विषयकरनेवाली दृष्टिभी भ्रमतेहुयेवत् होती है, तद्वत्ही लोककी दृष्टि है। अरु तैसे "। ध्यायतीव लेलायतीव "। ध्यानकरतेवत् लीला करतेवत् होवे है, यह श्रुति स्पष्ट कहती है । तिसकरके आत्मदृष्टिको नित्य होने से एककालविषे

होना अरु एक काल बिषे न होना ऐसा नहीं। बाह्य अनित्य दृष्टि रूप उपाधि के बशसे लोकों को अरु तार्किकनको, वेदके सम्प्रदाय करके रहित होने से "अनित्यात्मनो दृष्टिरिति" आत्माकी दृष्टि अनित्यहै, यह भ्रान्ति घटितही है। अरु जीव ईश्वर अरु परमात्माके भेदकी कल्पना भी इसहीकी भ्रान्तिरूप निमित्तवालीही है। अरु जितने [किम्वा "आत्मनैवायं ज्योतिषाऽऽस्ते" "अयमात्मा ब्रह्म" "सर्वानुभूः प्रज्ञानघन एव" आत्मरूप ज्योतिसेही यह सर्व है, यह आत्मा ब्रह्महै, सर्व का अनुभवरूप प्रज्ञान धनही है, इत्यादि श्रुतियों से आत्माको नित्य दृष्टिरूप होने से, अरु "सर्वाः प्रजा यत्रैकं भवन्तीति" जहां सर्व प्रजा एक होतीहै, इत्यादि श्रुति करके सर्व कल्पना के तन्मात्रपने करके, अरु ताते भिन्नकरके अभावका कथन होने से, अरु आत्माको निर्विशेषरूप होने से, तिस आत्मरूप नित्य दृष्टिविषे ,है वा नहीं है, इत्यादि सर्व कल्पना भ्रान्तिरूप निमित्तसेही है। इसप्रकार कहते हैं,] वाणी के नाममय अरु मनके रूप। वा संकल्प। मयभेद जहां (जिस आत्माविषे एक होते हैं, तिसको बिषय करनेवाली (तिसकी स्वरूपभूत) इसही से नित्य निर्विशेष। अर्थात् सर्वभेद रहित। दृष्टिकी ,,है,, ऐसी कल्पना आस्तिकन को है, अरु ,, नहीं है ,, ऐसी कल्पना, नास्तिकन को है, अरु "है 'नहीं है" ऐसी कल्पना दिगंबरमतवाले को है, अरु अन्योंको भी सावयव भावादिकों की कल्पना है सो सर्वही भ्रान्तिरूप निमित्तवाली है। [ननु, वेतार्तिक आत्माके अस्तिपने आदिकों को युक्तिरूप तर्क से साधतेहैं, एतदर्थ उनको भ्रान्तिरूप निमित्त करके युक्तपना नहीं, यह आशंकाकरके श्रुति बिरुद्ध होनेसे, अरु आत्माबिषे असंभवसे अरु तिन कल्पना के सद्भाव हुये मोक्षका असंभव होनेसे, तिन तार्किकों की कल्पना प्रमाणके मार्गपर आरूढ़ होती नहीं, ऐसा कहते हैं,] कईएक बादियों के मतबिषे आत्मा है ऐसी कल्पना है, अरु किसी के मतबिषे नहीं है, ऐसी

कल्पना है, अरु किसी के मतविषे है औ नहीं है, ऐसी कल्पना है, अरु किसी के मतविषे अनेक गुणवाला है, अरु किसी के मतविषे गुण रहित है, अरु किसी के मतविषे जानता है, अरु नहीं जानता है, अरु किन्हीं के मतविषे क्रियावाला है, किसी के मतविषे क्रिया रहितहै, अरु कोई के मतविषे फलवालाहै, किसी के मतविषे फल रहित है, अरु किसी के मतविषे कर्म अरु बासनारूप बीजवाला है, अरु किन्हीं के मतविषे बीज रहित है अरु किसी के मतविषे सुखरूप है, किसी के मतविषे दुःखरूपहै, किसी के मतविषे मध्यम है (देहतुल्य आकारवाला है) अरु किसी के मतविषे अमध्यम (अणु वा विभु) है, अरु किसी के मतविषे शून्य है, अरु किसी के मतविषे अशून्य है, अरु किसी के मतविषे यह अन्य है, मैं अन्य हौं, ऐसी कल्पना है ॥ सो ऐसी कल्पना को मन बाणी से अगोचर आत्माविषे कल्पना करनेको इच्छताहै सो निश्चयकरके आकाशको भी चर्मवत् वेष्टन करनेको । [अर्थात् आकाशको चर्म से वेष्टित (मढ़नेको) करने को वा वेष्टन मृगचर्मादि वा चटाईवत् वेष्टन (लपेटनेको) करने को] । इच्छताहै, अरु जलविषे जलचरन के (खोज) पादचिह्नों को अरु आकाशविषे आकाशचारियों के खोज (पादचिह्नों) को देखने को इच्छते हैं ॥ "नेति नेति" अरु "यतोवाचो निवर्त्तन्ते" जहां से बाणी निवृत्त होती है, । इत्यादि श्रुतियों से अरु "कोऽद्धावेदेत्यादि" कौन साक्षात् जाने, इसमन्त्रके वाक्य से, आत्मा को मन बाणी की अविषयता सिद्धहै ॥ ननु,[आत्माकोबाणी अरु मनकी अविषयताकेहुये श्रवणअरुमननकेअसम्भव से आत्माका ज्ञान [होना] सम्भवे नहीं इस प्रकार वादी शंका करे है] तब तिस आत्मा का "तमहंसम आत्मेति विद्याम्" सो मेरा आत्मा है, इस प्रकार का ज्ञान कैसे होवेगा, जो "सम आत्मेति" सो मेरा आत्मा है तिसको मैं किस प्रकार जानो ॥ ताते सो प्रकारकहो [कि जिस करके मनवाणी आदिकों का

अविषय आत्मा अपना आप जाना जाय। ॥ यहां [" नेतिनेति " ऐसे नहीं, ऐसे नहीं, । इत्यादि श्रुतिके उदाहरण करकेही अन्यके निषेधसेही तिस स्वप्रकाशका बोध होताहै, इसप्रकार आत्मज्ञान के। होनेके। प्रकारको कथन कियाहै ताते अरु यहां अन्यप्रकार के अभावसे इसही प्रकारसे अविषय होनेकरके भी आत्मा जानने को योग्य है। अर्थात् बुद्ध्यादिकों का अविषय अरु सर्वका प्रकाशक साक्षी आत्मा श्रुतिके निषेधमुख वाक्य करके जानने योग्य है। इसप्रकार मानिके सिद्धान्ती उपहास सहित उत्तर कहताहै,] सिद्धान्ती आख्यायिका कहताहै, कोई एक प्रसिद्ध मूढ़ मनुष्यथा, तिसको किसीभी अपराधके होनेसे कईएक पुरुषों ने " तुझको धिक्कार है, तू मनुष्य नहीं, इसप्रकार कहा। तब सो पुरुष मूढ़ होनेकरके, अपने मनुष्यपनेकी प्रतीति करनेको किसी अन्यपुरुष के पास जायके प्रश्न करताहुआ कि हे साधो, मैं, कौनहों सो तुम कहो, तब वो उसकी मूढ़ताको जानके। कि यह मूढ़है। कहताहुआ कि तुझको क्रमसे बोध करौंगा ॥ पीछे स्थावरादि स्वरूपभाव को निषेध करके तू अमनुष्य नहीं हैं, इसप्रकार कहके उपराम होताहुआ। पश्चात् वो मूढ़पुरुष उस बोध कर्त्ता के प्रति कहताहुआ कि, आप मुझको बोध करनेको प्रवर्त्त हुये, अरु चुप्प होतेहुये, सो बोध क्यों नहीं करते, तब पुनः उसने कहा कि तू अमनुष्यही है, इसप्रकार तिसके भावसे तैसेही वाक्य कहतेहुये, जो अपने मनुष्यपनेको जानता नहीं सो मनुष्यहै, इसप्रकार कहनेसे भी अपने मनुष्यपने को कैसे जानेगा ताते शास्त्रके अनुसार उपदेशही आत्माके बोधका प्रकारहै अन्य नहीं। एतदर्थ अग्निसे जलावनेयोग्य जो तृणादि सो अन्यकिसी से भी जलावने को शक्य नहीं। इसही करके शास्त्र जो है सो आत्मस्वरूप को बोधन करनेको प्रवृत्तहुआ अमनुष्यपने के निषेधवत्, " नेति नेति " ऐसा कहके उपराम होता है। तैसे पुनः " अबाह्य " यह सर्वका अनुभवरूप आत्मा ब्रह्महै, " एतावदनु-

शासनम्" एतनाही अनुशासन (उपदेश) है, "तत्त्वमसि" सो तूहै, "यत्र त्वस्य सर्वमात्मैवाभूत्तत्केनकं पश्येत्" जहां तो इसको सर्व आत्माही होताभया तहां किसकरके किसको देखेगा, इत्यादि श्रुति शास्त्रभी आत्मा के वेद्यपने को निषेधही करताहै। अरु यावत् यह पुरुष ऐसे उक्तप्रकारके इस (अपनेआप) आत्मा को जानता नहीं तावत् यह बाह्य अनित्य दृष्टिरूप उपाधि को आत्मापने करके जानके अविद्या से उपाधि के धर्म को अपने धर्मकरके मानताहुआ, ब्रह्मासे आदि लेके देवतिर्यक् अरु नरक योनिरूप स्थानों बिषे बारम्बार आवृत्ति (संसृति, भ्रमणको) प्राप्त होताहुआ, अविद्या काम अरु कर्म के वशसे संसारको प्राप्त होता है। सो इसप्रकार संसार को पावताहुआ। ग्रहण किये देह अरु इन्द्रिय के संघात को त्यागता है पुनः अन्य संघातको ग्रहण करता है। वारम्बार ऐसेही नदीके प्रबाहवत् जन्म मरण रूप बन्ध के अनाशकरके युक्त बर्त्तमानहुआ किन अवस्था करके युक्त वर्त्तता है, इसही अर्थ को। [यहां यह भाव है कि जीवकी अवस्थारूप तीन जन्मको अत्यन्त ग्लानिरूप होनेसे तिसके बिचारने से वैराग्य होता है,] वैराग्यके अर्थ देखावतीहुई श्रुति कहे है, कि [" पुरुषेहवा अयमादि तो गर्भो भवति " पुरुषबिषे यह आदिसे गर्भहोताहै, इस वाक्यबिषे ,इदं,शब्दके अर्थको कहते हैं। यहां यह अर्थ है कि जो मस्तकको विदीर्ण करके तहां प्रवेश करके स्थित है सो ,, यह ,, इसप्रकार कहते हैं [यहही (कि जिसने मस्तकके द्वार से प्रवेश कियाहै)। अविद्या काम अरु कर्मवान् जीव, यज्ञादि कर्मोंको करके इस मृत्युलोक में धूमादिकके क्रम से चन्द्रमसि (स्वर्ग वा पितृलोक) को पायके (कर्म्मोंका फल भोगके) कर्म्मो के क्षयवाला हुआ वृष्टि आदि क्रमसे इस भूलोकबिषे आयके अन्नरूप हुआ पुरुष कहिये पितारूप अग्निबिषे आहुति हुआ है। (" तस्मिन्नेतस्मिन्नग्नौ देवा अन्नं जुह्वति " इस श्रुति के प्रमाण से) "(पुरुषेह वा आयमादितो गर्भो

भवति "। (पुरुष विषे प्रसिद्ध यह प्रथम गर्भ होता है) अर्थात् तिस पुरुष विषे प्रसिद्ध यह संसारी रसादिक धातुके क्रमसे प्रथम वीर्यरूपसे गर्भ होता है। अर्थात् यह जीव स्वर्ग विषे अपने पुण्य कर्म का फल भोग पुण्य के क्षयहुये वृष्टिके मार्ग से पृथिवी विषे आय अन्नरूप से प्रकट होता है पुनः किंचित् पुण्य कर्म के शेष से कर्मानुसार इसको जिस वर्णजाति में जन्म पावना होता है तिस वर्णजातिके पुरुषके उदरविषे आय वीर्यरूप से वह प्रकट होता है, इस प्रकार का सुकृती जीव का जो अपने कर्मानुसार पुरुषके उदरविषे आवना है सो उसका प्रथम गर्भवास है, ॥ तिसको कहते हैं "। यदेतद्रेतस्तदेतत् सर्वेभ्योऽङ्गेभ्यस्तेजः सम्भूतात्मन्येवात्मानंबिभर्त्ति तद्यथा स्त्रियां सिञ्चत्यथैतज्जनयति तदस्य प्रथमं जन्म "। (जो यह रेत है सो यह सर्व अङ्गो से तेज उपजा है, आत्मा को आत्माविषे धारता है तिसको जब स्त्री विषे सिंचन करता है तब इसको जन्म देता है सो इसका प्रथम जन्म है) अर्थात् जो यह पुरुषविषे रेत कहिये वीर्य है तिसरूपसे। सो प्रकट। होता है, अरु सो यह रेत अन्नमय पिंडके रसादि धातुरूप सर्व अंगों से शरीर का साररूप तेज उपजता है सो पुरुष का आत्मारूप होने से आत्माहै। अर्थात् अन्नमय पुरुष का सारभूत होने से रेत उसका आत्मा है। तिस रेतरूप से गर्भरूप हुये आत्माको। अर्थात् जो जीव अपने कर्मानुसार अन्नरूप से पुरुषके उदरविषे आय वीर्यरूप से प्रकट हुआ है वा वीर्यविशिष्ट हुआहै तिसआत्माको। आत्मा (शरीर) विषे धारताहै। तिस रेतको जब, जिस कालमें अपनी भार्य्या (स्त्री) ऋतुमती होय तब तिस कालमें। अर्थात् स्त्री के रजस्वला होनेके चतुर्थदिवस उपरान्त पञ्चमादिवससे सोलहवेंदिवस पर्यन्त स्त्री ऋतुमती रहती है सो ऋतुकालमें स्त्री से भोगकरना तिसमेंभी समदिवस अर्थात् चौथा छठा आठवां दशवां बारहवां चौदहवां सोलहवां यह त्याज्यहैं। तिस स्त्रीरूपाअग्निविषेस्त्रीगमन

तत् स्त्रिया आत्मभूयं गच्छति । यथा स्वमङ्गं तथा । तस्मादेनां न हिनस्ति । साऽस्यैतमात्मानमत्र गतं भवति २ । २५ ॥

करतसन्ते सिंचनकरे (अर्थात् स्त्री में अग्निकी भावना अरु वीर्य में हवीकी भावनाकर स्त्री के विषे वीर्य को स्थापनकरे इस प्रकार करने से सर्वोत्तम गुण विशिष्ट पुत्र प्रकट होता है) तब पिता तिस इस अपने गर्भरूप रेतको जन्मदेता है, इससंसारी जीवका (जो पुरुषके वीर्यरूप गर्भ में आयाहै) वीर्य के सेचन कालविषे जो तिस पुरुषके स्थानसे निकलनाहै सो प्रथम जन्म (प्रथमावस्थाका प्रकटपना) है १ । २४ ॥

हे सौम्य! "तत्स्त्रिया आत्मभूयं गच्छति" (सो स्त्री के स्वरूपसे अभिन्नता को पावता है) अर्थात् भार्याविषे रेतको सिञ्चन करताहै इसअर्थविषे "असावात्माऽमुमात्मानमिति" यह आत्मा (पुरुष) इस आत्माको (अपने रेतरूप आत्मा को) इस (भार्यारूप) आत्माके अर्थ देता है, । यह वाक्य प्रमाणहै । सो [ननु स्त्री के शरीरविषे प्रवेशको पाया पुरुष का वीर्य स्त्रीको शरीरविषे लगे बाणवत् उपद्रव करनेवाला होवेगा, यह आशंका चित्तविषे ल्यायके "तत्स्त्रिया आत्मभूयं गच्छति" सो वीर्य स्त्री के आत्मभावको पावता है, । इत्यादिरूप यह वाक्य कहाहै,तिस का व्याख्यान करते हैं] रेत जिस स्त्री विषे सिंचनकिया है तिस स्त्री के स्वरूप से अभिन्नताको प्राप्तहोता है, जैसे पूर्व पिताके स्वरूप से अभिन्नता को पाया तैसे, । अरु "यथास्वमङ्ग तथा । तस्मादेनां नहिनस्ति" (जैसे अपना अंग, तिस इसको नाश करता नहीं) अर्थात् जैसे अपना (स्त्री का) स्तनादिरूप अंग अपने स्वरूपसे अभिन्नताको पायाहै तैसेही अभिन्नताकोपावता है। तिस हेतुसे सो गर्भ इस माताको पिटकादि शरीरविषे उत्पन्नहुये व्रण (फोड़ा रूप ग्रन्थीविशेष) वत् नाश (पीड़ा)

सा भावयित्री भावयितव्या भवति। तं स्त्रीगर्भंबिभर्ति। सोऽग्र एव कुमारं जन्मनोऽग्रेऽधिभावयति। स यत् कुमारं जन्मनोऽग्रेऽधिभावयति। आत्मानमेव तद्भावयत्येषां लोकानां सन्तत्या एवं सन्तताहीमेलोकास्तदस्य द्वितीयं जन्म ३। २६॥

करता नहीं, ताते स्तनादि अपने अंगोंवत् आत्मभावको पाया है, ताते सो रेत माताको बाधाकरता नहीं। अरु "सांऽस्यैतमात्मानमत्रगतंभवति" (सो इसके इस आत्माको यहां प्रवेश को जानके पालन करेहै) अर्थात् सो गर्भिणी ऐसे इस अन्नरूप भर्त्ता के इस (वीर्यरूप) आत्माको यहां उदर विषे प्रवेशको पाया जानके पालन करेहै। अर्थात् गर्भ से विरुद्ध भोजनादिकों के परित्याग को अरु गर्भ के अनुकूल भोजनादिकों के उपयोगको करे है॥ "गर्भइव सुभृतो गर्भिणीभिः"॥ २। २५॥

हे सौम्य! "सा भावयित्री भावयितव्या भवति" (सो पालन करनेवाली रक्षाकरनेको योग्य होती है) अर्थात् सो [सो गर्भिणी तिस गर्भरूप भर्त्ताका भी रक्षण करती है ताते सो भर्त्ता करके रक्षाकरने योग्यहै, इसप्रकार कहते हैं] गर्भरूप भर्त्ता के स्वरूपकी पालन करनेवाली गर्भिणी भर्त्ताकरके रक्षाकरनेयोग्य होती है! अरु जिसकरके लोकविषे उपकारके प्रतिउपकार किये विना किसीका किसी से भी सम्बन्ध संभवे नहीं तिसकरके सो गर्भिणी भर्त्ताकरके रक्षण करने योग्य है "तं स्त्री गर्भं बिभर्ति" (तिस गर्भको स्त्री धारण करेहै) अर्थात्। अरु तिस गर्भको स्त्री जन्मसे पूर्व उक्त गर्भधारण के विधानसे धारण करे है। अरु "सोऽग्र एव कुमारं जन्मनोऽग्रेऽधिभावयति" (सो जन्मसे पूर्वही कुमारको अरु जन्म से पीछे कुमारको पालनकरेहै) अर्थात् सो पिता जन्मसेपूर्वही उत्पन्नहोनहार बालकको पालनकरेहै। अरु "स यत् कुमारं जन्मनोऽग्रेऽधिभावयति, आत्मानमेव तद्भाव-

सोऽस्याऽयमात्मा पुण्येभ्यः कर्म्मेभ्यःप्रतिधीयते । अथास्याऽयमितर आत्मा कृतकृत्यो वयोगतः प्रैति । स इतः प्रयन्नेव पुनर्जायते । तदस्य तृतीयं जन्म । तदुक्तमृषिणा ४ । २७ ॥

यति" (सो जिस कुमारकी जन्मसे पूर्व रक्षा करे है अरु जन्मसे पीछे उत्पन्नहुये कुमारको जातकर्मादिकों से पालन करे है सो अपनेआपकोही पालनकरे है) अर्थात् पिताका आत्मा (शरीर) ही पुत्ररूपसे जन्मताहै। अरु तैसे "पतिर्जाया प्रविशति इत्यादि" पिता जो है सो गर्भरूप होयके जायारूप माताविषे प्रवेशकरता है तिस जायाविषे पुनः नवीन होयके दशम मासविषे जन्मताहै,। यह वाक्यकहाहै। प्र०। किसअर्थ अपनेको पुत्ररूपसे उपजायके पालनकरे है,। तहां कहते हैं, "एषां लोकानां सन्तत्या एवं सन्तताहीमे लोकस्तदस्याद्वितीयं जन्म" (इन लोकोंकी सन्तति के अर्थ (पालन करे है) जाते यह लोक प्रबन्धरूप करके वर्त्तते हैं, सो इसका द्वितीय जन्महै) अर्थात् इन पुत्रपौत्रादिरूप लोकोंकी सन्तति (अविच्छेद) के अर्थ पालनकरेहै। अरु जो पुत्रके उत्पादनादिकों को न करे तो यह लोक विच्छेदको पावेंगे। अरु जिस करके वे ये लोक पुत्रके उत्पत्त्यादि कर्म करके अविच्छेदसेही प्रबन्ध (अर्थात् पुत्रादिकों की उत्पत्त्यादि कर्मविषे विच्छेद न होय तिस संकेत) रूप करके वर्त्तते हैं, ताते तिनके अविच्छेदार्थ पुत्रकी उत्पत्त्यादि कर्म कर्त्तव्य है, मोक्षार्थ नहीं। अरु कुमाररूप से माता के उदरसे जो निकसना है सो रेतरूप की अपेक्षा से इस संसारी पुरुषका द्वितीय जन्म (द्वितीय अवस्था की प्रकटता) प्रसिद्ध है ३ । २६ ॥

हे सौम्य ! " सोऽस्याऽयमात्मा पुण्येभ्यःकर्म्मेभ्यः प्रतिधीयते " (इसका सो यह आत्मा पुण्यकर्म के अर्थ स्थापनकियाहै) अर्थात् इसपिताका सो यह पुत्ररूप आत्मा शास्त्रोक्त पुण्यकर्म के अर्थ

(कर्म्मोंके सम्पादनार्थ) स्थापनकियाहै, अर्थात् पिताको जो कर्म कर्त्तव्यहैं तिनके करने केअर्थ पिताके स्थानापन्न (पुत्रको) स्थापन करनाहै। तैसेही बृहदारण्यक उपनिषद्विषे सम्पत्तिनाम कर्मविद्या के प्रकरणविषे "पित्रानुशिष्टोऽहं ब्रह्माहं यज्ञोऽहं इत्यादि" पिताकरके शिक्षितहुआ, मैं ब्रह्माहूं, मैं यज्ञहूं, इत्यादि रूपको पावता है। इसप्रकार कहा है॥ "अथाऽस्याऽयमितर आत्मा कृतकृत्योवयोगतःप्रैति" (पश्चात् इसका यह अन्य आत्मा कृतकृत्यहुआ मरताहै) अर्थात्, पश्चात् पुत्रविषे भारको स्थापन करके इसपुत्रका यह जो पितारूप अन्यआत्माहै सो कृतकृत्यहुआ (तीनों ऋणरूप कर्त्तव्य से मुक्तहुआ) अरु आयुके पूर्णहुये मरताहै "सइतः प्रयन्नेव पुनर्जायते तदस्य तृतीयंजन्म, तदुक्तमृषिणा" (सो इससे शरीरको परित्याग करताहुआही पुनःजन्मता है सो इसका तृतीय जन्म है, सो ब्राह्मणभाग कहेहैं) अर्थात् सो इसलोकसे शरीरको परित्याग करताहुआही तृण जलौका (जोंक) वत् कर्म्मों करके रचित अन्यदेहको ग्रहण करताहुआ पुनः जन्मताहै। मरणको पायके जो (कर्मानुसार) प्राप्तहोने योग्यहै सो इसपुरुषका तृतीयजन्म (तृतीयावस्थाकी प्रकटता) है॥ ननु, संसार को करनेवाले पिता से रेतरूप करके प्रथम जन्म कहा। तिसहीका माताके उदरसे कुमाररूप करके प्रकट होना, द्वितीय जन्मकहा। अरु तिसही के तृतीय जन्मके कहने को योग्यहुये मरणको प्राप्तहुये पिताका जो जन्म सो तृतीय जन्म है, ऐसा कैसे कहते हो (तहां सिद्धान्ती कहताहै) कि यह दोष नहीं क्योंकि पिता अरु पुत्रकी एकताको कहनी इच्छित है ताते, सो पुत्रभी अपने पुत्रविषे अपना भार स्थापित करके यहांसे देहको त्यागताहुआही पितावत् पुनः जन्मको पावता है ताते पुत्रकाही तृतीयजन्म कहा है ऐसे जानना, अन्य (पिता के) ठिकाने कथनकिया सो जन्म अन्य (पुत्रके) विषयमेंकथन किया होताहै, इस प्रकार से श्रुति माननी है, क्योंकि पिता अरु

गर्भेनुसन्नन्वेषामवेदमहं देवानाजनिमानिविश्वाः । शतंमापुरआयसीररक्षन्नधः श्येनोजवसानिरदीयमिति गर्भएवैतच्छयानोवामदेवएवमुवाच ५ । २८ ॥

पुत्रकी एकता है ताते। इस प्रकार तीनअवस्था की प्रकटता करके संसारको पावताहुआ (जन्ममरणरूप बन्धनबिषे आरूढ़ गाढ़बंधपाया) सर्वलोक संसार समुद्रबिषे पतनको पाया है। सो किसी प्रकार से भी येनकेन अवस्थाबिषे श्रुतिकरके प्रतिपादित आत्मा को जानता है तबही संसारके सर्व बन्धनों से मुक्त हुआ कृतकृत्य होवेहै। सो यह वस्तुका तत्त्व मन्त्रबिषे भी कहा है। इस प्रकार अग्रिम वाक्य बिषे यह ब्राह्मभाग कहताहै ४।२७॥

हे सौम्य ! [यहां यह अर्थ है कि वाक् अरु अग्न्यादिकन के शरीरग्रहणरूप जन्म कहे, तिस करके उपलक्षित सर्व संसार भी वाकादिक करण अरु तिनके अधिष्ठाता देवतादिकोंके संघात रूप लिंग शरीरकोही है, परन्तु असंग अरु निष्पाप मुझको नहीं। इस करके पदार्थ के विवेकपूर्वक आत्मा का ज्ञान कहा। यद्वा सर्वज्ञ आत्मासेही इनके जन्म हैं, इसप्रकार इनके जन्मके हेतुरूप मूलकारण आत्माको मैं जानताहौं। यहां यह भावहै कि यद्यपि गर्भबिषे श्रवणादिरूप ज्ञानकी सामग्री नहीं, तथापि पूर्व जन्मबिषे किये श्रवणादिरूप सामग्रीके वशसे ही प्रतिबन्ध की निवृत्तिकेहुये भी गर्भबिषे ज्ञानकी उत्पत्ति सम्भवेहै] " गर्भेनुसन्नन्वेषामवेदमहं देवाना जनिमानि विश्वाः " (गर्भस्थानबिषेही हुआ मैं इनदेवताओंके सर्व जन्मोंको अहो जानताहौं) अर्थात् माताके गर्भस्थानबिषेही स्थितहुआ, अनेक जन्मान्तरकी (परमशुद्ध शुभ भावनाके पर्यायके वशते (अर्थात् अनेक जन्मों में किये किंचित् किंचित् आत्मविचारके संस्कारएकत्रहोय दृढ़ता अरु वृद्धिको पावते हैं अरु तिनके प्रभाव से कर्मादिकोंके संस्कार अतिहत पुरुषार्थ होते हैं, तब उस निर्विक्षेपहुये अन्तःकरणमें

जन्म जन्मान्तरोंके किये आत्माके श्रवणादि किये ज्ञानके संस्कारोंकी तीव्रसंवेदनके होने से गर्भादि अवस्थाविषे स्वतः ही ज्ञानस्फुरणहो आवताहै "। अनेकजन्मसंसिद्धस्ततोयातिपरांगतिम् "। इत्यादि प्रमाण से । जैसे सोयेहुये पुरुषके स्वप्न में चलने के संस्कारों के तीव्र संवेग होनेसे वो निद्रामेंही उठके चलदेता है तैसेही अनेक जन्मों में किये आत्माके श्रवणादि ज्ञानके संस्कार एकत्रहोय । तीव्रसंवेग (उत्थान) कोपावतेहैं तबगर्भादिस्थानावस्थामें स्वतःज्ञानका स्फुरणहो आवताहै। अरु स्वप्नवालेपुरुषका जो निद्रामें गमनहै सो अज्ञानजन्यहै ताते उसको अपनी गमन क्रियाका ज्ञाननहीं, अरु यहां गर्भस्थ विद्वान्को जो आत्मस्वरूप ज्ञानका स्फुरणहै सो श्रवणादि ज्ञानके संस्कारजन्य है ताते सर्व अवस्थाविषे यथार्थही हैं। ॥ मैं इनवाक् अरु अग्न्यादिदेवताओं के जन्मोंको जानताहौं यह आश्चर्य्यहै, जो । देवताओंके जन्मकीभी मुझको ज्ञातहै, "शतं मा पुर आयसीररक्षन्नधःश्येनो जवासा निरदीयमिति" (मुझको अनेक लोहमयीपुरिया रक्षाकरतीहुई,अधो श्येनपक्षिवत् आत्मज्ञानके किये सामर्थ्य से निकला है) अर्थात् मुझको अनेक लोहमयीवत् भेदनकरनेको अयोग्य शरीररूपी पुरिया रक्षाकरतीहुई । अर्थात् जैसे पक्षीको लोहमयी पींजरा बन्धनकरताहै। तैसे विनाआयुके पूर्णहुये किसीप्रकारसे भी नाश को प्राप्तहोवै नहीं ताते लोहमयी यह शरीररूपी पुरिया मुझको बन्धन करतीहुई , । मैं संसारपाश (जाल) से निकसनेकरके अधोमुख (अन्तरमुख) देखताहुआ श्येन (शिकरा वा बाज पक्षिविशेष) पक्षीवत् आत्मज्ञानके किये सामर्थ्य से । अविद्यात्मक संसार वा अनात्म अभिमानरूपा । जालको भेदनकरके निकलाहुआहौं ॥ । यह गर्भस्थविद्वान् का विचार कथनहै कि मैं जालको भेदनकरके निकलाहौं ताते यह निश्चय है कि शरीर के त्यागसे संसारकीनिवृत्ति न होके सम्यक् आत्मज्ञान होनेके समकालही संसारपाशकी सकारण अशेषनिवृत्तिहै। "। गर्भ एवैतच्छ-

स एवं विद्वानस्माच्छरीरभेदादूर्द्ध्वउत्क्रम्यामुष्मिन् स्वर्गे लोके सर्वान् कामानाप्त्वाऽमृतः समभवत् । समभवत् ६ । २९ ॥ इति चतुर्थखंडः ॥

इति ऐतरेयोपनिषद्गतद्वितीयोऽध्यायः ॐतत्सत् ॥

यानो वामदेव एवमुवाच ” (गर्भविषेही स्थितहुआ वामदेवऋषि यह इसप्रकार कहताहुआ) अर्थात् इसरीतिसे अहो (आश्चर्य है) जो गर्भविषेही सोया (स्थितहुआ) वामदेवऋषि यह उक्तप्रकार का अनुभव प्रकटकरताहुआ॥-॥ यह आत्मज्ञानकी अचिंत्य अपार महिमाहै जो गर्भस्थादि किसीअवस्थामेंभी सम्यक् ज्ञानहोतेही , वाम , कहिये तत्पदके वाच्य ईश्वर से विपरीत त्वंपदकावाच्य, अरु , देव , कहिये बुद्धिआदिक सर्वकाप्रकाशक, ऐसा जो शरीर प्राण मन बुद्धि इन्द्रियादिक संघात विशिष्ट चैतन्यरूप वामदेव ऋषि सो अपने लक्ष्यसाक्षीआत्मा के सम्यक् अनुभवसे गर्भ में ही संसाररूप जालका भेदन करता है॥-॥ ५ । २८ ।

हेसौम्य ! “सएवं विद्वानस्माच्छरीरभेदादूर्द्ध्व उत्क्रम्यामुष्मिन् स्वर्गेलोके सर्वान् कामानाप्त्वाऽमृतः समभवत् । समभवत् ” (सो ऐसे जानताहुआ इस शरीरके भेदसे निकलके इस स्वर्ग लोकविषे सर्वकामों को पायके अमृत होताहुआ, , अमृत,होता हुआ) अर्थात् सो, [ज्ञानको अव्यभिचारी होनेकरके फलवान्ताके जनावनेकेअर्थ वामदेवने फलपाया, इसप्रकार कहनेको “ सएवं विद्वान् ” सो इसप्रकार जाननेवाला, । यहवाक्यहै, तिसका व्याख्यान करते हैं] वामदेवऋषि उक्त आत्माको उक्तप्रकार जानताहुआ इस शरीरके भेदसे, अर्थात् अविद्याकरके कल्पित (ताते भ्रान्तिमात्र) अरु लोहके पिंजरेवत् (दृढ़) अरु भेदन करनेको अयोग्य, अरु जन्म मरणादि सहस्रावधि अनर्थोंकरके व्याप्त शरीररूप बन्धन के, परमात्मा के ज्ञानरूप अमृत के योग से जनित सामर्थ्य के किये भेदसे । (अर्थात् शरीरोत्पत्तिके बीज

अविद्याके विनाशते शरीरके विनाशहुये, अर्थात् अविद्याके अशेष नाशहुये शरीर के रहतेही विद्वान्की दृष्टिमें शरीर का अभाव है क्योंकि स्वप्नशरीरवत् भ्रान्तिमात्र है ताते। । ऊर्द्ध्व परमार्थरूप हुआ, अधोभावरूप संसारसे निकसाहुआ, ज्ञानकरके प्रकाशित निर्मल शुद्ध सर्वात्मभावको प्राप्तहुआ इस उक्तप्रकार के अजर अमर अमृत [इस स्वर्गविषे मनुष्य देहादिक के भावको छोड़ि के स्वरूपभावसेही स्थित होताहुआ, इसप्रकार कहते हैं] अभय सर्वज्ञ अपूर्व (अकारण) अनपर (अकार्य)। अर्थात् , परावर, कारणकार्य भावरहित। अनन्त अबाह्य प्रज्ञान अमृत एकरस स्वस्वरूप भूत स्वर्गलोक विषे , निर्वाणको प्राप्तहुये दीपकवत्, प्राप्तहोताहुआ।। अर्थात् सामान्य उष्मालक्षणवाला जो सर्वत्र व्याप्तअग्निहै सो तेलबत्ती आदिक उपाधिके सम्बन्धसे विशेष दीपकभावसे प्रकटहोताहै अरु जब तेलबत्तीरूप उपाधिको भस्म करके निर्वाणहोताहै तब विशेषभावको त्यागके अपने सामान्यरूपको प्राप्तहोताहै, तैसेही सामान्यज्ञानस्वरूप सर्वव्यापि चैतन्य परमात्मा प्राण अन्तःकरण इन्द्रियों के संघातरूपलिङ्ग शरीररूप उपाधि साथमिल विशेष जीवभावको प्राप्तहुआहै सो जब अपने सामान्य सर्वात्म चैतन्यस्वरूपकोजानताहै तब लिङ्गरूपबत्ती अरु कर्म्म संस्काररूप तेलको "ज्ञानाग्निसर्वकर्माणि भस्मसात्कुरुते तथा" इत्यादि प्रमाणसे, भस्मकर अनहुई उपाधिसे मुक्तहुआ , अर्थात् आकाशादि भूत भौतिक कार्यरूप उपाधिहै तिनसब का कारण एक अद्वैत आत्माही है, अरु कारणसे कार्यकी पृथक् सत्ता के अभावसे कार्य कारणरूपही है ताते अविद्याकरके कल्पित जो आत्माविषे उपाधिसो वास्तव विचारसे न होनेकरके अनहुईहीहै, तिस उपाधिसे मुक्तहुआ अपने सामान्य सर्वात्म चैतन्य भावको प्राप्तहोताहै।॥ आत्मज्ञानकरके पूर्व प्रप्तकामवालाहोनेसे जीवताहुआही सर्वकामोंको प्राप्तहोके अमृतहोताहुआ।अर्थात् सर्वका कारण सर्वरूपआत्मा तिसकी सम्यक्प्राप्तिसे सर्वकीप्राप्तिहोतीहै

अथ ऐतरेय उपनिषद्गत तृतीयोध्यायः

हरिः ॐ ॥ कोऽयमात्मेति वयमुपास्महे । कतरः स आत्मा । येन वा रूपं पश्यति । येन वा शब्दं शृणोति । येन वा गन्धानाजिघ्रति । येन वाचं व्याकरोति । येन वा स्वादु चास्वादु च विजानाति ॥ १ । ३० ॥

ताते आप्तज्ञानी विद्वान्को प्राप्तकामकहते हैं, अर्थात् "इहैवसर्वेप्रविलीयन्तिकामा" इत्यादिप्रमाणसे पुरुषकोसर्वात्मभावकी प्राप्तिसेही सर्वकामना अभावहोती है, अरु कामनाके अभावहुए जीवते ही अमृतहोताहै "। यदा सर्व्वे प्रमुच्यन्ते कामायेऽस्यहृदिश्रिताः, अथ मर्त्योऽमृतोभवत्यत्र ब्रह्मसमश्नुते "। इत्यादि प्रमाणसे । अमृत होता हुआ, यहां दो वार जो कथनहै सो फल सहित अरु बामदेव के उदाहरण सहित आत्मज्ञानकी परिसमाप्ति के दर्शनार्थ है ॥-॥ । अर्थात् बामदेवके उदाहरण से सिद्धहुआ कि आत्मबिषयक किया श्रवणादिकके संस्कार निष्फल न होयके जन्मान्तर में भी मोक्षकरनेवाले होते हैं, ताते विवेकी मुमुक्षु पुरुष करके आत्मविषयक श्रवणादि अवश्यकरने योग्यहैं ॥ ६ । २६ ॥

इति श्रीऐतरेयोपनिषद्गतद्वितीयाध्यायभाषाभाष्य समाप्तम् ॥

अथ ऐतरेयोपनिषद्गततृतीयाध्याय भाषाभाष्यंप्रारभ्यते ॥

हे सौम्य ! [पूर्व के द्वितीयाध्यायबिषे ज्ञानोत्पत्तिके अर्थ तीन जन्मके निरूपणसे बैराग्यको निरूपणकिया । अरु पदार्थ के शोधन बिना केवल बैराग्यमात्रसेही ज्ञानोत्पत्तिहोवे नहीं, याते पदार्थ के शोधन पूर्वक वाक्यार्थ के कहनेको तृतीय अध्यायहै । इसअभिप्रायसे पदार्थके शोधनबिषे अधिकारीको देखावतेहुये वाक्यको प्रकट करते हैं,] वामदेवादिक आचार्योंकी परम्परासे श्रुतिकरके प्रकाशितहुई, अरु ब्रह्मवेत्ताओंकी सभाबिषे अति प्रसिद्ध ब्रह्मविद्यारूप साधनके किये सर्वात्मभावरूप फलकी प्राप्तिको जानते

हुए आधुनिक ब्राह्मणरूप मुमुक्षु ब्रह्मकी जिज्ञासावाले, अरु जीव भावपर्यन्त अनित्यसाधनरूप संसार से निकसनेकी इच्छावाले होयके विचारकरतसंते परस्पर प्रश्नकरतेहुए। प्र०। किसप्रकार पूछतेहुए, [विचारके प्रकारकोही वाक्यके अन्वयसे स्पष्ट करने को पूछताहै] तहां कहतेहैं, "। कोयमात्मेति वयमुपास्महे कतरः स आत्मा "। ¿ यह आत्माहै,हम उपासनाकरें कौन सो आत्माहै, कौन प्रसिद्ध सो आत्माहै ? अर्थात् जिस आत्माको "यह आत्मा है,, इसप्रकार साक्षात् हम उपासनाकरें कौन सो आत्माहै> ऐसे अरु जिस आत्माको यह आत्माहै, इसप्रकार साक्षात् उपासना करताहुआ वामदेवऋषि अमृत होताहुआ। तिसही आत्मा को हम भी उपासनाकरें। कौन प्रसिद्ध सो आत्मा है। इसप्रकार परस्पर प्रश्न करतेहुये। इस रीतिसे [ननु, भूतोंके मध्य प्रकटता के अर्थ जो प्रवेशको पायाहै सो आत्माहै, इस निर्द्धारके सम्भव से विचारका असंभवहै, यह आशंकाकरके, ऐसे हुये भी प्राण अरु आत्मा दोनोंको प्रविष्ट होनेकरके स्मरण किये होनेसे। (अर्थात् प्राण अरु आत्मा दोनों के प्रवेशका स्मरण होने से)। तिनका निर्द्धारणनहीं है, इसप्रकार कहनेको दोनोंका प्रविष्टपना स्मरण किया,ऐसे कहते हैं] जिज्ञासापूर्वक परस्पर प्रश्न करनेवाले उन ब्राह्मणों को पूर्व कथन किये जो देहविषे प्रवेशको प्राप्तहुये प्राण अरु आत्मा तिनको विषय करनेवाली श्रवणसे जनित अनुभव से जन्य संस्कारसे उदयहुई स्मृति उपजतीहुई " तं प्रपादाभ्यां प्रापद्यत ब्रह्मेमं पुरुषं स एतमेवसीमानं विदार्य्य तयाद्वारा प्रापद्यत एतमेव पुरुषं," तिस इसपुरुष शरीरके अर्थ दोनों पादोंके अग्रों से ब्रह्मा (ब्रह्मरूप प्राण) प्रवेशको पायाहै, सो इसही मस्तककी सीमाको विदीर्ण करके तिस द्वारसे प्राप्त होताहुआ,। इस श्रुति करके इसही पुरुष के अर्थ दोनों ब्रह्म परस्पर की प्रतिकूलता करके प्रवेश करतेहुये, इसप्रकार की स्मृति होती हुई। अरु वो प्राण अरु परब्रह्म इसपिंडके आत्मरूपहैं। [तिन

इसप्रकार विचारविषे अपेक्षित दोनों आत्माकी स्मृतिको कहके अब विचारको कहते हैं] दोनोंविषे एकआत्मा उपासना करने के योग्य उचित है । जो यहां उपासना करनेको योग्य है सो निश्चय करके कौन आत्माहै, इसप्रकार विशेष निर्द्धारणार्थ पुनः विचारकरते परस्परमें प्रश्न करतेहुये । पुनः [ऐसे विचारके कियेहुये अतिशय शुद्ध अन्तःकरणवाले होनेसे, तिनको पादके अग्रसे प्रवेशको प्राप्तहुये प्राणविषे करणपने करके अनात्माका निश्चय होताहुआ, अरु मस्तक से प्रवेशको प्राप्तहुये आत्माविषे उपलब्धापनेकरके आत्मताका निश्चय होताहुआ, ऐसा कहाहै, इसका अर्थ यहहै कि तिनको विचारके स्थान प्राण अरु आत्मा इनदोनों को विषय करनेवाली, एकविषे करणपनेरूप अरु दूसरे विषे उपलब्धापनेरूप प्रकारसे विशेष (विलक्षण) रूप बुद्धि-होतीहुई,] इन विचार करनेवालों को विशेष विचारके आश्रय को विषय करनेवाली बुद्धि होतीहुई । कैसे होतीहुई कि, इस पिंडविषे अनेक भेद करके भिन्न करण से दोनों वस्तु प्रतीतहोवे हैं । अरु जिस करके प्रतीत होवेहैं, अरु जो एक अन्य करणों करके जानेहुये विषयों की स्मृतिके संघात से प्रतीत होवे है तहां प्रथम जिस करके प्रतीत होवेहै सो आत्मा होनेको योग्य नहीं । किस करके [इसप्रकार वर्णन करके तिस अर्थको श्रुति-योंके अक्षरों से आरूढ़ (दृढ़) करनेको वादी प्रश्न करता है] प्रतीत होताहै ? । [तहां अब सिद्धान्ती प्रश्नकिये अर्थको श्रुति करके दृढ़ करताहै] कहते हैं " येन वा रूपं पश्यति, येनवाशब्दं शृणोति, येन वा गन्धानाजिघ्रति, येनवाचंव्याकरोति, येन वा स्वादु चास्वादुच विजानाति " (जिस चक्षु करके प्रसिद्धरूपको देखता है, जिस श्रोत्रकरके शब्दको श्रवण करता है, जिस घ्राण करके गन्धोंको सूंघताहै, जिस वाणीरूप करण करके नामरूपा-दिकों को कहता है, जिस (रसनेंद्रिय) करकेस्वादु अरु अस्वादु को जानता है) । १ ॥ ३० ॥

यदेतद्धृदयं मनश्चैतत् । संज्ञानमाज्ञानं । विज्ञानं । प्रज्ञानं । मेधा । दृष्टिर्धृतिर्म्मतिर्म्मनीषा । ज्यूतिः । स्मृतिः । संकल्पः । क्रतुरसुः । कामोवशइति । सर्व्वाण्येवैतानि प्रज्ञानस्य नामधेयानिभवन्ति २ । ३१ ॥

हे सौम्य, सो [ननु चक्षुरादि करणोंको करणपने के होने से भी पादके अग्रद्वारा प्रवेशको प्राप्तहुये प्राणकी करणरूपता के विषे क्या आया, इसप्रकार वादी शंकाकरता है [एक करण अनेक प्रकारके भेदको क्योंपायाहै। [तहां प्राणकीही करणता को कहने को प्रथम हृदय अरु मन शब्द के वाच्यकी चक्षुरादिकों के भेदसे भिन्नताको कहते हैं [तहां कहतेहैं, कि "प्रजानां रेतो हृदयं हृदयस्थंरेतोमनो मनसा सृष्टा आपश्चवरुणश्च । हृदयान्मनो मनसश्चन्द्रमा तदेवैतद्धृदयं मनश्चऐकमेतदनेकधा"। प्रजाका रेतकहिये सारभूत वीर्य्य, हृदयहै, अरु हृदयविषे स्थित रेत (सारभूतकार्य) मनहै, अरु मनकरके जल अरु वरुण सृजेहैं, हृदय से मन अरु मनसे चन्द्रमा होते हैं। इत्यादि प्रकार श्रुतिविषे "यदेतद्धृदयं मनश्चैतत्"। (जो यह हृदय अरु यह मन अर्थात् जो यह पूर्व कथन किया हृदय अरु मनरूप करण सोई यह तुझकरके प्रश्न कियाहुआ करण एकहुआ चक्षुरादिकोंके भेद करके अनेक प्रकारसे भेदको पायाहै । इस एकही चक्षुरूप हुये अन्तःकरण करके रूपको देखताहै, श्रोत्ररूपहुये अन्तःकरणकरके शब्दको श्रवण करताहै, घ्राणरूपहुये अन्तःकरणकरके गन्धलेता है अरु वाक्‌रूपहुये अन्तःकरण करके बोलताहै । अरु जिह्वा वा रसनारूपहुये अन्तःकरणकरके स्वादोंको लेताहै । आपही विकल्परूप मनकरके विकल्प करताहै । बुद्धिरूपकरके निश्चयको करताहै ॥ ताते सर्वकरण अरु विषयरूप व्यापारवाला एक यह करण उपलब्धाको सर्व्व उपलब्धिके अर्थ होताहै । तैसेही कौशीतकि उपनिषद्‌विषे "प्रज्ञयावाचं समारुह्य वाचा सर्व्वाणि

नामान्याप्नोति प्रज्ञया चक्षुः समारुह्य चक्षुषा सर्व्वाणि रूपाण्याप्नोति, इत्यादि " प्रज्ञा (बुद्धि) से वाचाके बिषे आरूढ़ होय के वाचासे सर्वनामों को पावताहै, प्रज्ञासे चक्षु के विषे आरूढ़ होयके चक्षुकरके सर्व्वरूपों को पावता है, । इत्यादि वाक्यों करके कहा है । अरु बृहदारण्यउपनिषद् बिषे „ मनसा ह्येव पश्यति मनसाश्रृणोति हृदयेन हि रूपाणि जानाति, इत्यादि„ मनसेही देखताहै,मनसे श्रवणकरताहै,हृदयसेही रूपको जानता है,। इत्यादि वाक्योंसे कहाहै। ताते हृदय अरु मनशब्दके वाच्यको सर्व उपलब्धि (ज्ञान) का कारणपना प्रसिद्धहै। अरुतिस हृदयरूप प्राणहै। तहां„यो वै प्राणः सा प्रज्ञा या वै प्रज्ञा स प्राण इतिब्राह्मणम्„ जो प्रसिद्धप्राणहै सो प्रज्ञाहै, जो प्रसिद्धप्रज्ञाहै सो प्राण है,। यह ब्राह्मण प्रमाणहै। अरु "करण संहतिरूपश्च प्राण इति वो चाम" करणों का समूहरूप प्राणहै, ऐसा हम कहते हैं,। यह प्राण संवादादिकबिषे स्थित वाक्यके बलसे प्राणकी करण समूह रूपता जानिये है। अतएव जो पादके अग्रभाग से शरीरबिषे प्रवेशको पाया प्राणादिक करणहै, यह उपलब्धिका कारण होने करके ब्रह्महै। इसप्रकार कहते हैं। परन्तु यह करणका समूह रूप वस्तु गुणरूप होनेसे ब्रह्मभावसे उपासना करने योग्य (जानने योग्य) आत्मा होनेको योग्य नहीं। [तब तैसे (ब्रह्मकरके [जाननेयोग्य कौनहै,। तहां कहते हैं।] परिशेषसे जिस उपलब्धा की उपलब्ध्यर्थ इसहृदय अरु मनरूप करणकी अग्रिमकहने की वृत्तियां हैं, सो उपलब्धा उपासना करने योग्य । अर्थात् जानने के योग्य। हमाराआत्मा होनेको योग्यहै, इसप्रकार वो मुमुक्षुनिश्चय करतेहुये। प्रज्ञानरूप ["येन वै पश्यति" जिसकरके देखताहै, इत्यादि लेके "मनश्चैतत्" यह मन, यहां पर्यन्त प्राणके करणपने करके अनात्मतारूप अर्थको कहके "संज्ञानं" संज्ञान, । इत्यादि लेके "वश" यहां पर्यन्त जो वाक्य हैं सो अन्तःकरण की वृत्तिद्वारा तिससे भिन्न उपलब्धाके लखावने के अर्थ इस

प्रकार कहते हैं] तिस अन्तःकरणरूप उपाधिविषे स्थित उपलब्धास्वरूप ब्रह्मकी उपलब्धि (ज्ञान) के अर्थ जो बाहर भीतर वर्त्तमान विषयनको विषयकरनेवाली अन्तःकरणकी वृत्तियां हैं सो यह वृत्तियां कहिये हैं "संज्ञानमाज्ञानं, विज्ञानं, प्रज्ञानं मेधा, दृष्टि र्धृतिर्म्मतिर्म्मनीषा, ज्यूतिः, स्मृतिः, सङ्कल्पः क्रतुरसुः, कामो, वश इति । सर्वाण्येवैतानि प्रज्ञानस्य नामधेयानि भवन्ति" "संज्ञान, आज्ञान, विज्ञान, प्रज्ञान, मेधा, दृष्टि, धृति, मति, मनीषा, ज्यूति, स्मृति, सङ्कल्प, क्रतु, असु, काम, वश, यह सर्वही प्रज्ञान के नाम होते हैं" अर्थात् . संज्ञान, सम्यक् ज्ञप्तिरूप चैतन्यभाव । . आज्ञान, सर्वओरसे ज्ञप्तिरूप ईश्वरभाव । .विज्ञान, चौंसठ ६४ कलादिकों से जन्य लौकिक ज्ञान । .प्रज्ञान, तत्कालीन भावरूप प्रज्ञा ।.मेधा,ग्रन्थधारणविषे शक्ति । .दृष्टि, इन्द्रियोंद्वारा सर्वविषयों का ज्ञान ! .धृति, शिथिलहुये देहेन्द्रियोंका पुनः सावधान होना जिसकरके होय, अर्थात जिसकरके धृतिसे शरीर वहन (चलना फिरनादि) करे हैं, ऐसा कहते हैं, तिसही करके ऐसा जो धारण सो धृति । . मति, मनन । . मनीषा, मननजन्य स्वतन्त्रता, वा मनका नियामकपना । .ज्यूति, चित्तका रोगादि निमित्तसे दुःखित होनेपना । .स्मृति, स्मरण । . सङ्कल्प, रूपादिकोंका शुक्ल, कृष्णादि भावसे कल्पना करना । . क्रतु, निश्चय । . असु, प्राणनादि जीवन क्रियाके निमित्तवाली वृत्ति । .काम, असमीपस्थ विषयों की इच्छारूपा तृष्णा । .वश, स्त्रीसंगादिकों की इच्छा । वा मनका स्ववश न रहना । ॥ इत्यादिक [इत्यादि वृत्तियां सर्व प्रज्ञान के नाम होते हैं, इसप्रकार अग्रिमवाक्यसे अन्वय है] यह अन्तःकरण की वृत्तियां हैं, सो चैतन्यमात्र रूप उपलब्धा की उपलब्धिके अर्थ होनेसे शुद्ध प्रज्ञानरूप अरु नामरूपसे रहित ब्रह्म की जिसकरके उपाधिरूप है, एतदर्थ तिस उपाधि से जनित गौणनाममय संज्ञादिक यह सर्व प्रज्ञप्तिमात्र प्रज्ञानके नाम होते हैं । साक्षात्स्वरूपसेही नहीं । तैसे "प्राणन्नेव प्राणोनाम भवति"

प्राणको करताहुआही प्राणनाम होताहै । [यहां यह कथन किया होताहै कि संज्ञानादिक जो शब्द हैं सो प्रकाशरूप वस्तुके वाची हैं, अरु जड़रूप अन्तःकरणकी वृत्तियों को साक्षात् प्रकाशरूपता संभवे नहीं, एतदर्थ प्रकाशरूप वस्तुविषे अध्यायसेही इन वृत्तियों की प्रकाशरूपताहै, इसप्रकार कहतेहुये अधिष्ठानरूप भिन्नप्रकाश को जनावते सन्तें तात्पर्य से प्रकाशरूप प्रज्ञानकेही नाम होतेहैं यहां संज्ञानादिक जड़ वृत्तियों को अनित्य होने करके प्रकाशरूप वस्तुके वाचक संज्ञानादिक नामवान्पने के असंभव से तिनसे भिन्न कोई एक प्रकाशरूप है, इसप्रकार कहा । तैसे संज्ञानादिक शब्दोंकीवाच्यताके कथनसे सो प्रज्ञानविज्ञानरूप चैतन्यहै यहांही प्राज्ञतारूप वृत्ति होती नहीं, इसप्रकार कहा, क्योंकि तिसकी अनेक रूपता करके तिस तिस वृत्तिगत तिस तिस नामवान्ता करके सर्वनामवान्ता के असंभव होने से । अरु "प्रज्ञान के" इस एक वचनका असंभव होनेसे । याते "येन वा पश्यति" जिस करके प्रसिद्ध देखता है, इत्यादि लेके "प्रज्ञानस्य नामधेयानि भवन्ति" प्रज्ञानके नाम होते हैं, यहां पर्यन्त जो वाक्य हैं तिनकरके सर्व करण अरु तिनकी वृत्तियों से भिन्न स्वप्रकाशरूप सर्वका साक्षी (सर्व से पृथक्) सर्व वृत्तियों बिषे (जलकी सर्व तरंगों में सूर्य्यके प्रकाशवत्) अनुगत, (सर्व के धर्म कर्मादिकों से असंग) एक आत्मा शोधन किया] इत्यादि रूप वाक्य प्रमाण हैं २ । ३१ ॥

हे सौम्य, "एष ब्रह्मैष इन्द्र एष प्रजापतिरेते सर्वे देवा इमानिच पञ्चमहाभूतानि" (यह ब्रह्म है, यह इन्द्र है, यह प्रजापति है, यह सर्वदेव, अरु पञ्च महाभूत हैं,) अर्थात्, सो [इसप्रकार शोधन किये आत्मा के शरीर शरीर के प्रति नानाभाव के निवारणार्थ "एष ब्रह्म" यह ब्रह्महै, । इत्यादिरूप वाक्य है तिनका व्याख्यान करते हैं] यह प्रज्ञानरूप आत्मा ब्रह्म है (मुख्य ब्रह्मभावको आगे कथन किया है ताते यहां ब्रह्म

एष ब्रह्मैष इन्द्र एष प्रजापतिरेते सर्वे देवा इमानि च पञ्च महाभूतानि । पृथिवी वायुराकाशश्चापोज्योतींषीत्येतानीमानि च क्षुद्रमिश्राणीव बीजानीतराणि। चेतराणि चाण्डजानि च। जरायुजानि च स्वेदजानि चोद्भिज्जानि। चाश्वा गावः पुरुषा हस्तिनो यत् किञ्चेदं प्राणिजङ्गमं च पतत्रि च यच्च स्थावरम् । सर्वं तत् प्रज्ञानेत्रम्। प्रज्ञाने प्रतिष्ठितम्। प्रज्ञानेत्रो लोकः। प्रज्ञा प्रतिष्ठिता प्रज्ञानं ब्रह्म ३ । ३२ ॥

शब्द करके सर्व शरीरविषे स्थित प्राण अरु प्रज्ञारूप आत्मा, जल भेदगत सूर्यके प्रतिबिम्बवत् अन्तःकरणरूपउपाधिविषे प्रवेश को पाया समष्टि लिङ्ग शरीरोंका अभिमानी हिरण्यगर्भरूप प्राण प्रज्ञानात्मारूप अपरब्रह्मको कहते हैं) अरु यहही इन्द्रहै, क्योंकि „इसको देखताहुआ„ इस श्रुतिउक्त गुणका योगहै ताते, वा देवताओं का राजाहै ताते। अरु यह प्रजापतिहै (जो प्रथम उत्पन्न हुआ शरीरवालाहै अरु जिसके मुखादि भेदोंद्वारा अग्न्यादिलोकपाल उपजे हैं, सो प्रजापति, वा प्रजासहित सर्व्वका नायक प्रजापति। अरु यह अग्न्यादि सर्व्व देवता यही है । अरु पञ्च महाभूतभी यही है ॥ तहां "पृथिवी वायुराकाश आपोज्योतींषी त्येतानीमानिचक्षुद्रमिश्राणीव बीजानीतराणि" (पृथिवी वायु आकाश जल तेज, यह अल्पजन्तुओं करके मिश्रित, अरु बीज अरु इतर? अर्थात् यह सर्व्व शरीरों के उपादानरूप , पृथिवी, वायु, आकाश, जल, तेज, रूप यह अन्न अरु अन्नादि भावरूप पञ्चमहाभूत यहही है । अरु अल्प जन्तुओं करके मिश्रित सर्पादिक भी यही है । अरु बीज (कारण) अरु इतर (कार्य) रूपभी यही है। अरु "चेतराणि चाण्डजानि च,जरायुजानिच, स्वेदजानि चोद्भिज्जानि, चाश्वा गावः पुरुषा हस्तिनो यत्किञ्चेदं प्राणि

जङ्गमं च पतत्रि च यच्च स्थावरम् ” । “अरु इतर, अण्डज, जरायुज, स्वेदज, उद्भिज्ज, अश्व, गऊ, मनुष्य, हस्ति अरु जो कुछ भी इन प्राणियोंकासमूह जङ्गम, पक्षी, स्थावर है ; अर्थात् अन्य स्थावर जङ्गम भेदसे कथन किये अण्डज (पक्षी आदिक) अरु जरायुज (मनुष्यादिक) अरु स्वेदज (जूंआं आदिक) अरु उद्भिज्ज (वृक्षादि) अश्व गो मनुष्य हस्ति अरु अन्य जो यह कुछ भी प्राणियोंका समूह जो दोनों पादों से चलताहै ऐसा जङ्गम अरु जो आकाशमें उड़नेवाले पक्षी पतत्रि, अरु जो स्थावर(वृक्षादिअचल) हैं“सर्वं तत् प्रज्ञानेत्रम्, प्रज्ञाने प्रतिष्ठितम्, प्रज्ञानेत्रोलोकः, प्रज्ञा प्रतिष्ठिता, प्रज्ञानं ब्रह्म ” । “सो सर्व प्रज्ञारूप नेत्रवालाहै, [प्रज्ञा नाम प्रज्ञप्तिकाहै, सो ब्रह्मही है तिसकरके जो सत्ताको प्राप्तहोता है सो नेत्रकहिये है, अर्थात् प्रज्ञारूपहैं नेत्र जिनका ऐसा जो जगत् सो प्रज्ञानेत्र कहते हैं] प्रज्ञानबिषेस्थितहै, प्रज्ञानरूप नेत्रवालालोक है, प्रज्ञा प्रतिष्ठाहै प्रज्ञानब्रह्महै ? अर्थात् सो सर्वओरसे प्रज्ञारूपनेत्रवालाहै, अरु प्रज्ञानरूप ब्रह्मबिषे, उत्पत्ति, स्थिति , अरु लय, तीनोंकालबिषे स्थितहै (प्रज्ञाके आश्रितहै) ताते प्रज्ञारूपनेत्रवाला लोकहै, वा प्रज्ञानरूप चक्षुवाला सर्वलोकहै। एतदर्थ प्रज्ञा (ब्रह्म) सर्वलोककी (जगत्की) प्रतिष्ठा (आश्रय) है। ताते [इस प्रकार होनेसे प्रज्ञानरूप प्रत्यगात्मा का निर्विशेषपना आदिक प्रसिद्ध है, इसप्रकार कहते हैं। प्रज्ञानकोही अवशेषरूप होनेसे, अरु परमार्थसे सत्य होनेसे, यहां यह अर्थ बनता है] प्रज्ञान (प्रत्यगात्मा) ब्रह्महै। सो [अब ब्रह्मशब्द के अर्थको कहते हैं] ब्रह्म सर्व्व उपाधिके भेदसे रहित , सत्, निरंजन, निर्मल, निष्क्रिय, शान्त, एक, अद्वैत, अरु “नेतिनेति” इस श्रुति प्रमाण सर्व्व विशेषके अभावपूर्वक जाननेयोग्य, सर्व्वशब्द अरु वृत्तियों का अविषयहै। सो अत्यन्त शुद्ध प्रज्ञा (माया) रूप उपाधि के सम्बन्धसे सर्व्वज्ञ ईश्वर नामसे कहाजाताहै, अरु सर्व्व को साधारण अव्याकृतरूप जगत् के बीजका प्रवर्त्तक नियन्ता होने

स एतेनप्रज्ञेनात्मनाऽस्माल्लोकादुत्क्रम्यामुष्मिन्स्वर्गेलोके सर्वान्कामानाऽप्त्वाऽमृतः समभवत् । समभवत् इत्योम् ४ । ३३ ॥

इति ऐतरेयारण्यके षष्ठोध्यायः ॥

उपनिषत्सुतृतीयोध्यायः समाप्तः ॐतत्सत् ॥

से अन्तर्यामी नामसे कहा जाताहै । अरु सोई जगत् की बीजरूप समष्टि बुद्धिविषे आत्मापने के अभिमानरूप उपाधिवाला हुआ हिरण्यगर्भ नामसे कहाजाता है । अरु सोई ब्रह्मांडरूप उपाधिवालाहुआ विराट् नामवाला होताहै । अरु तिस विराट् के भीतर प्रकटहुये प्रथम शरीररूप उपाधिवालाहुआ प्रजापतिनामसे कहाजाता है । अरु तिस ब्रह्मांडसे उत्पन्नहुये अग्नि आदिक उपाधिवालाहुआ अग्न्यादि देवताओं के नामसे कहाजाता है । अरु तैसेही विशेष (व्यष्टि) शरीररूप उपाधिविषे तिसतिस नामसे ही कहाजाता है कि जिसजिस उपाधिवाला होता है । इसप्रकार ब्रह्मासे आदि लेके स्तंभपर्यन्त सर्व भूतों विषे तिस तिस नामरूपका लाभ होताहै । सोई एक ब्रह्म सर्व उपाधिके भेदसे भिन्नहुआ, सर्व प्राणियों करके अरु तार्किकों करके सर्व प्रकारसे जानते हैं, अरु अनेक प्रकारसे विकल्पों का विषय करते हैं । इस अर्थविषे " एतमेकेवदन्त्यग्निं मनुमन्ये प्रजापतिम् । इन्द्रमेकेऽपरे प्राणमपरे ब्रह्म शाश्वतमित्याद्या स्मृतिः" इस आत्माको कईएक अग्नि कहते हैं, कई एक मनुष्य कहते हैं, कईएक प्रजापति कहते हैं, कईएक मनु कहते हैं, कई एक इन्द्र , कई एक प्राण, कईएक ब्रह्म, कईएक नित्य शाश्वत कहते हैं, इत्यादि यह स्मृति प्रमाणहै ३ । ३२ ॥

हे सौम्य ! [अब इस प्रकारके ब्रह्मआत्माके (अभेद) ज्ञाता के अर्थ फलको कहनेको " स एतेनेत्यादि" सो इस करके, । इत्यादि रूप श्रुतिवाक्यहै;तहां एकवचनांत"स"इसशब्दसे प्रसंग

विषे प्राप्तहुये "कोऽयमात्मेति" कौन यह आत्माहै, । इसप्रकार विचारनेवाले बहुत मुमुक्षुओं के स्मरण की अयोग्यता से । अरु आधुनिक विद्वान् के "स" इस भूतकालके वाची शब्द करके स्मरणकी अयोग्यता से पूर्वाध्यायविषे उक्तवामदेव स्मरण करतेहैं, इसप्रकार कहते हैं] जिसही प्रज्ञानरूप से ब्रह्मके जानने वाले पूर्व अमृत होतेहुये, अरु तिसही प्रज्ञानरूपसे उक्त प्रकार के ब्रह्मको जाननेवाला वामदेव वा अन्य विद्वान् सोअमृत होताहुआ "। स एतेन प्रज्ञेनाऽत्मनाऽस्माल्लोकादुत्क्रम्यामुष्मिन् स्वर्गेलोके सर्वान् कामानाप्त्वाऽमृतः समभवत् । समभवत् इत्योम्"। ६ सो इस ही प्रज्ञानरूपसे इसलोकसे उत्क्रमणकरके उस स्वर्गलोकविषे सर्वकामोंको प्राप्तहोके अमृतहोताहुआ, होताहुआ ऐसे ॐ हैं ? अर्थात् वामदेवादि उक्त प्रकारब्रह्मको जाननेवाला विद्वान् सो अमृत होताहुआ । तैसे यह आधुनिक विद्वान् भी इसही प्रज्ञानरूप से ब्रह्मको जानके इसलोकसे उत्क्रमण करके (देहात्मभावको त्यागकरके) उस ब्रह्मरूप स्वर्ग लोकविषे सर्व कामोंको पायके अमृत होताहुआ, इसप्रकार [उक्त आत्मतत्त्व को अंगीकाररूप अर्थके वाचीॐकार से अपने अनुभव के प्रकट करनेकरके । अरु "ॐकारश्चाथशब्दश्चद्वावेतौब्रह्मणःपुरा । कण्ठं भित्त्वा विनिर्यातौ तस्मान्माङ्गलिकावुभाविति" ओंकार अरु अथ यह दोनों शब्द पूर्व ब्रह्माके कंठको भेदनकरके प्रकटहुये हैं एतदर्थ यह दोनों मांगलिक हैं,। इस स्मृतिके प्रमाण से, ओंकार से ब्रह्मात्माके स्मरणरूप मंगलके करनेके अर्थ अन्तविषे "ॐ" इसप्रकार कथन कियाहै ४ । ३ ॥

इति श्रीऐतरेयोपनिषद्गततृतीयाध्यायभाषाभाष्यंसमाप्तम्शुभम्॥

इति श्री स्वामी ब्रह्मानन्दसरस्वतीजी का अतिअल्पज्ञ
शिष्य यमुनाशङ्करनाम्ना नागरब्राह्मणविरचित
यह ऐतरेयउपनिषद्का भाषाभाष्य समाप्तम् ॥
हरिः ॐ तत्सत् ब्रह्मार्पणमस्तु शुभम् भवतु ॥

इस मतबे में जितने उपनिषद् छपे हैं उनमें से कुछ नीचे लिखे हैं ॥

कठवल्ली उपनिषद् भा० टी० सहित क़ी० ≡)॥

इस उपनिषद् में गुरु शिष्यसंवाद द्वारा श्रीवाजश्रवा ऋषीश्वर के पुत्र श्रीउद्दालक ऋषिने जिसप्रकार से विश्वजित् नामायज्ञ की और उसीयज्ञ के दक्षिणा में ऋत्विजादि ब्राह्मणों को अपरिमित धन व गौओंको दान दिया और उसी यज्ञ में अपने परम प्रिय पुत्र ज्ञानशिरोमणि श्रीनचिकेता को मृत्यु के अर्थ दानदिया और नचिकेता यमालयमें गया और मृत्यु ने सावधान पूजन किया और परस्पर वार्त्तालाप हुआ वह सब वृत्त संवित मंत्रों में वर्णित है ॥

माण्डूक्योपनिषद् भा० टी०सहित क़ी० ॥=)

ॐ कारस्वरूप का प्रतिपादन व ब्रह्मकी आत्माकी अभेदताका निरूपण आगम, यवैताख्य, अद्वैताख्य व अलातशान्ताख्य इन चार प्रकरणों में निरूपण कियागया है अवलोकन करने योग्य है ॥

तैत्तिरीयउपनिषद् भा० टी० सहित क़ी० ।–)॥

यह उपनिषद् यजुर्वेद सम्बन्धी है-इसउपनिषद् में श्रीसच्चिदानन्द घन परब्रह्म परमेश्वर निराकार के साकार रूप होने का प्रतिपादन है ॥

ईशावास्योपनिषद् भा० टी० सहित क़ी० –)॥

जिसे वाजसनेयीसंहिता भी कहते हैं- इस उपनिषद् में यावत् नाम रूपात्मक जगद्भाव है सब ईशही में घटित कियाहै ॥

केनोपनिषद् भा० टी० सहित क़ी० =)

अब इसबार अत्यन्त शुद्धतापूर्वक सरलभाषा तिलक से युक्तमुद्रित की जाती है- इसमें आत्मविद्योपदेश श्रीप्रजापतिद्वारा वर्णन किया गयाहै ॥

छांदोग्यउपनिषद् भा० टी० सहित क़ी० ॥=)॥

इस उपनिषद् में इन्द्रियादिकों के संघात विषे स्थित प्राणों की ज्येष्ठताका व श्रेष्ठताका एक आख्यायिका द्वारा प्रतिपादन है-मंत्रों के नीचे सरल देशभाषा में सुन्दर तिलक कियागया है ॥